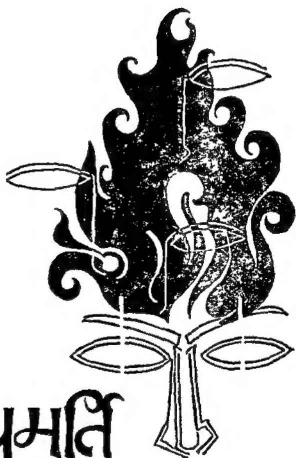


न्यायमूर्ति

ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

अनुवादक
हंसकुमार तिवारी

मूल्य पाच रुपये (5 00)
पहला संस्करण 1970 , © ताराशंकर वन्द्योपाध्याय
शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली, मे मुद्रित
NYAYAMURTI (Novel) by Tarashankar Bandyopadhyaya

एक

अदालत मे दौरे का मुकदमा चल रहा था। शुरू ही हुआ था अभी।

मुफस्सिल की दौरा-कचहरी। पश्चिम बगाल के पश्चिम की ओर का एक छोटा-सा जिला। साधारणतया शात-सा। खून-खराबी, दगा-हगामा खास वैसा नही होता। बीच-बीच मे दो-चार वैसे दगे या सिरफुडौवल की घटनाए जो घट जाती, सो इस कृषि-प्रधान इलाके मे खेती-बारी सबधी झगडो की वजह से। कभी-कभी ऐसे दगे या मारपीट नारी-सम्बन्धी कानूनी मामलो से भी हो जाती। उनमे से ज्यादातर तो नीची अदालत के इलाके मे ही निबट जाते, कानूनी पेचीदगी के कारण कभी कभार दो-चार मुकदमे नीची अदालत का दायरा तड़पकर दौरा-कचहरी के इलाके तक जा पहुचते। मसलन, मामूली चोरी। लेकिन चोरो की सख्या पाच। लिहाजा वह डकैती के दायरे मे आ गई और इस तरह जजी-कचहरी के वातावरण को गरम कर दिया। खेती-बारी के सिलसिले मे सिचाई के लिए मारपीट हुई। बहुत हुआ तो सिर फटा। लेकिन दोनो तरफ के लोगो की तादाद ज्यादा होने से वह दगे की गिनती मे आ गया और दौरा-अदालत तक जा पहुचा। इसलिए इस जिले को सरकारी दफ्तर मे आराम करने

का ज़िक्र किया जाता और बहुत बार काम के बोझ से दबे हुए कर्मचारियों को आराम का मौका देने के लिए यहां भेजा जाता। लेकिन फ़िलहाल जो मुकदमा चल रहा था, वह दौरे का एक पेचीदा मामला था।

खून का मुकदमा। कचहरी में खासी भीड़ लग गई थी। मुकदमा सिर्फ खून का नहीं, अजीब खून का मुकदमा था।

अदालत-कक्ष के मंच के नीचे विचारक के आसन पर स्थाणु बैठे थे ज्ञानेन्द्रनाथ। अचंचल, स्थिर। निरासक्त चेहरा, पलकहीन दृष्टि आंखों की। वह नज़र सामने की तरफ फैली हुई थी, पर किसी चीज़ पर टिकी हुई नहीं थी। सामने—अदालत के कमरे के दाएं चौड़े दरवाज़े से उस तरफ बरामदे पर लोगों की आमदरफ्त। बरामदे के नीचे कचहरी के अहाते के अन्दर सावन के घटा घिरे आसमान का रिमझिम या देवदार पेड़ के पत्तों पर बारिश से ओदी हुई हवा की घुमड़—सारा कुछ ही घिसे काच के उस पार की तसवीर-सा धुंधला हो गया था। आकार एक था, जीवन के स्पन्दन का इशारा था, किन्तु उसका आवेदन नहीं, बन्द खिड़की के घिसे काच की रोक से उस पार ही खो गया था। सरकारी वकील अपने आरम्भिक वक्तव्य में क्रम से घटनाओं को पिरोकर मुकदमे का शुरू से विवरण पेश कर रहे थे। ज्ञानेन्द्र बाबू की निगाह क्रम से उन घटनाओं को तूलिका से मन की पीठिका पर आंकती जा रही थी। कभी अचानक सामने की मेज़ पर रखे उनके दाएं हाथ की पेंसिल घूम उठती थी या बहुत ही धीमे-धीमे मेज़ पर आघात करती थी। वह भी बहुत ज़ोर तो मिनट भर के लिए।

प्रवीण-से गम्भीर आदमी। उमर साठ से नीचे ही। गोरे से खूब-सूरत आदमी। मजबूत और कर्मठ शरीर, लेकिन सर के सारे बाल सफेद

हो गए हैं। साफ-सुथरे घुटे गोरे मुखड़े पर नाक के दोनों तरफ और चौड़े कपाल पर कतार से कुछ रेखाएं। उन रेखाओं ने उनके सर्वांग पर मानो घनी उदासी की एक छाया डाली हो। लोग, खासतौर से वकील, जो उनके नौकरी जीवन के इतिहास को जानते हैं, कहते हैं, ये रेखाएं बहुत ज्यादा सोचने का परिणाम हैं। ज्ञानेन्द्र बाबू मुन्सिफ से जज हुए हैं, ऐसा बहुतेरे लोग होते हैं, लेकिन जीवन में उनके लिखे जितने फैसले अपील की अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं, उतने और किसीके हुए हैं, यह उन्हें नहीं मालूम। फैसला लिखने में इतना ज्यादा सोचने की बात उन्होंने आज के युग में नहीं सुनी। यही नहीं, उनकी सोचने की शक्ति भी हैरत में डालने वाली है। प्रमाण, प्रयोग, गवाह-सबूत की गहराई में बैठकर उनके ऐसे तत्व को खोज निकालते हैं कि सब कुछ का साधारण अर्थ और तथ्य का सत्य एकबारगी पलटकर उलटा हो जाता है। इतना ही नहीं, अपराध के मामले में क्षमाहीन हैं। खास अपना एक तराजू हाथ में लिए उस्तरे की तेज धार पर चलकर आखिरी छोर पर पहुंचने पर उस तराजू में जो जमा हो जाता है, वह अनखापने हाथों बांटी देते हैं, वह चाहे विष हो, चाहे अमृत।

[ख]

काम करते-करते थके हुए ज्ञानेन्द्रनाथ विश्राम के ही लिए इस छोटे-से और शांत-से जिले में, कुछेक महीने हुए, आए हैं। और इसी बीच वकील और अमलों की जमात में तरह-तरह की बातें फैल गई हैं। ज्ञानेन्द्रनाथ का जो अरदली है, वह हाल के जमाने के बंगाली का लड़का है। मैट्रिक फेल है। उत्सुक वकील और अमले-फैले उससे तरह-तरह के

सवाल पूछते। आमतौर से ज्ञानेन्द्रनाथ अपनी कोठी और कचहरी के सिवाय कही नही जाते। क्लब तक के सदस्य नही बने। इस पर उच्च-पदस्थ कर्मचारियो म भी खोज पूछ का अन्त नही।

इस प्रसग म वे कहते—ज्ञानेन्द्रनाथ शायद यह कहते है, स्त्री और किताब ही उनके सर्वोत्तम सगी हैं। उनके सिवाय दूसरे दोस्त-मित्र की उन्हे जरूरत नही।

उनके बारे म अफवाह बहुत है। कोई कहते हैं, वे कट्टर ब्राह्म धर्मावलम्बी हैं। कोई कहते है, घनघोर नास्तिक हैं। कोई कहता, यह आदमी एक बस नौकरी को ही पहचानता है। कोई कहता, नौकरी ठीक नही, असल म सिर्फ कानून से ही वास्ता। पाप पुण्य, भला-बुरा, धर्म-अधर्म उनके लिए यह सब कुछ भी नही है सिर्फ कानूनी और गैरकानूनी। अगरेजी म जिसे लीगल और इल्लिगल कहते हैं।

उनकी स्त्री सुरमा देवी भी जज की लडकी है। जस्टिस चटर्जी नामी जज हुए। आज भी लोग उन्हे याद करते है। बारिस्टर से जज हुए थे। सुरमा देवी सुशिक्षिता है। देखने म कभी अनन्य सुन्दरी थी। उनकी वह सुन्दरता आज भी मुरझाई नही है। उनके कोई बाल-बच्चा नही। देखने म अभी भी परिणत अवस्था की युवती सी लगती है। ऐसी सुरमा देवी भी माना ठीक से उनकी थाह नही पाती।

जज साहब का अरदली साहब को किस्सा कहानी कहने मे पचमुख रहता है। वे किस्सा-कहानियां उसने सुन-सुनाकर सजोई हैं। कुछ-कुछ उसकी खुद की भी देखी हुई हैं। वह कहता है, कभी-कभी मेमसाहब तक हाफ उठती हैं।

गरदन हिलाकर हसते हुए कहता है, अजी साहब, रात के बारह बजे तो साहब के लिए सिर्फ नौ बजे हैं। रोज रात के बारह बजे तक काम करते हैं। नौ बजे अरदली को छुट्टी हो जाती है। मेमसाहब उनकी मेज

के पास बैठी रहती हैं, साहब नथिया पलटते रहते है, सोचते है और लिखते हैं। अजीब आदमी है, न तो सिगरेट पीते हैं, न शराब, न कॉफी। दोनो शाम चाय दो कप। बहुत हुआ तो एकाध कप और। चुपचाप लिखने चले जाते हैं। बीच-बीच मे कागज उलटने की खसखस आवाज होती रहती है। कभी अचानक बोल उठे, एक या दो शब्द, जरा वह किताब तो दो। मेमसाहब से कहते हैं। आउट हाउस से अरदली लोग देखते हैं, सुनते है।

यहा के दो-चार वकील, वकील बाबुओं के मुहर्रिर और जजो के अमले उस अरदली से ये कहानिया सुना करते।

अरदली कहता नेकिन महीने म पाच सात दिन रात के दो दो बजे तक मैं अपने कमरे मे सो जाता हू। डेढ दो बजे रात मे रोज़ ही मेरी नीद खुल जाती है। प्यास लग जाती है। यह आदत मेरी बचपन से ही है। जगने पर देखता हू, साहब अभी तक जाग ही रहे हैं। कमरे मे रोशनी जल रही है। शुरू-शुरू मे मुझे हैरत होती थी, अब नही होती। पहले-पहल साहब के कमरे तक बढकर भी ठिठक जाता था, साहब के बुलाए बगैर जाऊं कैसे! दो-एक दिन दबे पावो जाकर खिडकी के पास चुपचाप खडा हो जाता था। देखता कि टेबिल पर झुककर साहब लिख ही रहे है। कभी-कभी सिर्फ चप्पल की आवाज सुनता। समझ जाता कि साहब कमरे मे चहलकदमी कर रहे हैं। अभी भी ऐसा होता है। कभी-कभी बाथरूम के अन्दर रोशनी जलती है, पानी गिरने की आवाज होती है। समझ लेता हू कि साहब सर धो रहे है। उधर सोफे पर ममसाहब सो जाती हैं। खट-खट आवाज होते ही जाग पडती हैं।

कहती हैं, हुआ खतम? कभी-कभी मेमसाहब झगड पडती हैं। यही तो, मेरी बहाली के पहले ही साल—समझ गए! मै उठकर बाहर निकला ही था कि देखा दरवाजा खोलकर ममसाहब निकली। खानसामा को

आवाज़ दी—शिवनन्दन ! ऐ शिवनन्दन !

अन्दर से साहब ने कहा, नहीं-नहीं । कर क्या रही हो । उसको क्यों पुकारने लगी ?

मेमसाहब ने कहा, जरा आरामकुर्सी बाहर निकाल दे ।

—मैं खुद ही निकाले लेता हूं । तमाम दिन काम करके थककर सो रहे हैं बेचारे । उन्हें मत पुकारो । दिनभर की थकान के बाद सो न पाए तो काम कैसे करेंगे । आखिर आदमी ही तो है ।

अचरज दिखाने का अभिनय करके अरदली ने कहा, और मैंने देखा, साहब खुद ही खींचकर आरामकुर्सी को बाहर निकाल रहे हैं। मैं झट दौड़ा कि तब तक मेमसाहब झगड़ पड़ीं । अब कैसे जाता ! चुपचाप खड़ा सुनता रहा । मेमसाहब ने कहा—अरदली अब सुनी हुई कहानी सुनाना शुरू करता । उसने यह साहब के पुराने अरदली से सुना । सुरमा देवी शायद पहले खीजकर कहा करती थीं—दुनिया के सभी आदमी हैं । रात को सोए बिना किसीका नहीं चलता । चलता एक भगवान का है, सुना है । मगर मैं यह नहीं जानती थी कि जजगिरी और भगवानगिरी में कोई भेद नहीं है । उसके बाद बोली और यही क्या ? मेरे पिताजी भी जज थे ।

ज्ञानेन्द्रनाथ हंसते । हंसते हुए दूसरी एक कुर्सी ले आकर कहते, लो बैठो ।

फैसला लिखना खत्म हो चुका होता । सुरमा भी समझ जाती । पति का चेहरा देखते ही वह ताड़ लेती । फैसला लिखना खत्म नहीं होने से सुरमा कुछ नहीं बोलती । महज दो-चार बात । कॉफी पियोगे ? टेबिल फैन लाने को कह दूं ? बस । उस समय ज्यादा कुछ बोलने का उपाय नहीं । कहती भी तो ज्ञानेन्द्रनाथ कहते, प्लीज, अभी नहीं, जो कहना हो इसके बाद ।

न्यायमूर्ति

फैसला लिख जाने के बाद वह लेकिन और ही आदमी हो जाते। सुरमा कहती, मुन्सिफ से तो जज हुए हो। बाल नही, बच्चा नही। फिर क्यों? ज्यादा और क्या होगे? हाईकोर्ट का जज या कि सुप्रीमकोर्ट का जज? उफ, अभी भी आकांक्षा नही मिटी?

ज्ञानेन्द्रनाथ की एक हंसी है, आदत डाली हुई हंसी। वही हंसी हंसकर कहते या कहते हैं—न। आकांक्षा मुझे नही है। ठीक वक्त पर अवसर लूंगा और उसके बाद वही फर्स्टबुक वाले निर्देश पर चलूंगा। गेट अप ऐट फाइव, गो टु बेड ऐट नाइन। नाइन क्यों, ऐट एट। सुबह जगकर मार्निंग वाक, उसके बाद झोला लेकर बाजार। तीसरे पहर मार्केट, तुम्हारी फरमाइश के मुताबिक ऊन खरीदकर लाऊंगा और घर पर तुम लगातार बकबक करती रहना, मैं सुना करूंगा। लेकिन जब तक नौकरी मे हूं, इससे मुझे छुटकारा नही।

और एक दिन, समझा?—अरदली और एक दिन का किस्सा सुना गया।

सुरमा ने कहा था, अच्छा यह तो बताओ, संसार मे ऐसा कोई आदमी है, जिससे गलती नहीं होती?

ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा, नही।

सुरमा ने कहा, तो?

—तो फिर क्या?

—यही कि तुम जो सोचते हो, तुम्हारा फैसला ऐसा होगा कि उसे विश्व-ब्रह्माड मे कोई नही बदल सकेगा। हाईकोर्ट नही, सुप्रीमकोर्ट नहीं। इतना दंभ क्यों है तुम्हें?

दंभ? ज्ञानेन्द्रनाथ ठठाकर हंस पड़े थे। अरदली ने कहा, उफ, यह हंसी! समझे नहीं। गोया मेमसाहब ने निरे बच्चे सी बात कही। मेमसाहब नाराज हो गईं। कहा, हंस क्यों रहे हो? इतनी हंसी की क्या

बात हुई ?

साहब बोले तुमने दम्भ हाईकोट सुप्रीमकोट—यह सब कहा न इसीलिए।

मेमसाहब बोली गल्ती हो गई मुझस। मुझे यह कहना चाहिए था कि भगवान भी नही बदल सकते।

ज्ञानेन्द्रनाथ गम्भीर हो गए थे। कहा उहू। उन बातो म म किसी के लिए नही सुरमा। मैं हसा यह सोचकर कि स्त्रिया सदा स्त्रिया ही रह जाती है।

—मतलब ?

—मतलब ? तुम तो यह अच्छी तरह जानती हो सुरमा। वह बात तो मेरी नही मेरे गुरु की है तुम्हारे पिताजी की। दम्भ नही हाईकोट म फैसला टिकेगा या नही टिकेगा यह भी नही। यह मै कभी नही सोचता। सोचता हू आज मैंने खुद जो फैसला दिया वह फैसला दो महीने या छ महीने या कि छ बरस बाद मेरी निगाह म गलत दीख और म अपने ऊपर ही स्टिक्चर न दे दू। अन्त म बहुत नाराज होकर तुमने भगवान की बात उठाई। बीच बीच म जजगिरी और भगवानगिरी की तुलना भी करती हो

उस दिन सुरमा पति की बात पर छूटते ही कह उठी थी स्वामी चिकोटी काटते हुए वह उठी थी नही। सो नही कहती कभी। कहती हू मेरे पिताजी भी जज थे। उनम तो ऐसा नही देखा। और भी बहुतेरे जज है उनके बारे म भी तो ऐसा नही सुनती। कहती हू तुम्हारी जजियाती और भगवानगिरी म फर्क नही है। हा सो तो कहती हू। तुम्हे देख कर कम स कम एसा ही लगता है मुझे।

दोनो आख बन्द करके प्रशात भाव से मीठा हसते हुए ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा था नही। मेरी जजियानी और भगवानगिरी की ही बात हुई।

भगवान पर मैं ठीक-ठीक यकीन नहीं करता, यह तुम्हें मालूम है, फिर भी तुमने तुलना जब की है, तो भगवानगिरी का जो बखान तुम सब करती हो, अच्छी-अच्छी किताबों में है उसीको सच मानकर कहूं, मेरी जजियातो भगवानगिरी से भी मुश्किल है। क्योंकि भगवान जो हैं, सर्वशक्तिमान है उनके ऊपर कोई मालिक नहीं है। वे सूक्ष्म विचारक जरूर हैं, लेकिन हैं ऑटोक्रैट। कम से कम दया दिखाने में उन्हें कोई रोक नहीं। वे चाहें तो मुजरिम को कसूरवार जानते हुए भी बेकसूर कहकर छोड सकते है। पाप-पुण्य का लेखा तैयार करके ज्यादा पुण्य होने से पापों का चार्जशीट को रद्दी की टोकरी में फेंक सकते हैं। आदमी जज ऐसा नहीं कर सकता। मैं तो कर ही नहीं सकता।

वकालतखाने से लेकर कचहरी के सामने वाले बरगद तले तक इस आदमी की ऐसी आलोचना दिन में एकाध बार होनी ही होती। ये बातें बेशक पुरानी हैं। इस उम्र ज़िले में उनकी बदली होने रहने के साथ-साथ ये बातें भी फैलती रही हैं। अब ज्ञानेन्द्रनाथ और भी जुदा-से हैं, और भी अजीब। हर घडी सोचते ही रहने वाले एक मौनी मनुष्य। मेमसाहब भी वैसी ही। दोनों ही एक दूसरे के निपट मानो धीरे धीरे मौन मूक होते जा रहे हैं। दो तटों में छलकती किसी नदी पर दो नावें जैसे दो ओर को बहती जा रही हैं।

[ग]

सरकारी वकील बडी सावधानी से मामले की घटनाओं का वर्णन करते जा रहे थे। अविनाश बाबू मजे हुए और विचक्षण वकील हैं। वक्ता के लिहाज से कुशल और कानून की जानकारी के हिसाब से बड

सूझ के इस विचारक को वह बहुत अच्छी तरह से पहचानते हैं। उनके अरदली की बातों से नहीं, अपने तजुरबे से। और, इस जिले में आने के बाद से नहीं, उसके बहुत पहले से। उस समय तक वह जिले के सरकारी वकील नहीं बने थे, उनकी शोहरत की शुरुआत थी। आसपास के ज़िलों से उनकी बुलाहट होने लगी थी। ज़िंदगी में इज़्ज़त जब पहले आती है, तो वह अकेली नहीं आती, पानी के वेग के साथ कल्लोल की तरह अहंकार को भी लिए आती है। उस समय वह अहंकार भी उन्हें था। दौरे के एक मुकदमे में मुजरिम की तरफ से गए थे। उस मुकदमे में उन्होंने इनका जैसा तिरस्कार किया था वह आज भी भुलाया नहीं जा सका है। आज भी कभी-कभी अचानक याद हो आता है।

वह भी एक अजीब घटना। बाप के खून के जुर्म में बेटा मुजरिम। साठ साल का बूढ़ा बाप, पैंतीस साल का जवान बेटा, वह भी दो बच्चों का बाप। मुकदमे की मुख्य गवाह थी मां। बेटा कृतकर्मा। जैसा बलशाली शरीर, वैसा ही अदम्य उत्साह और उतनी ही कुशल उसकी विषय-बुद्धि। जवानी की उठान के वक्त से ही बाप से अलग था।

बाप वैष्णव। धर्मभीरु। मातेक बीघा जमीन और छोटा सा एक अखाड़ा। यही संपत्ति। इसके साथ गांव की कुछ वृत्तियां। कार्तिक के महीने में टहल, बारहमासी पर्व-त्यौहारों में—झूलन, राम, होली, जन्माष्टमी, नदोत्सव—नाम-कीर्तन और रथयात्रा में भजन-कीर्तन। इसके लिए गांव से वृत्ति थी। इसीसे उसका गुज़ारा चल जाता। लड़का दूसरे ही स्वभाव का। शुरू से ही उसने यह बपौती वृत्ति छोड़ रखी थी और खेती वारी वाला रास्ता अपनाया था। खेत-मजूरी के काम से क्रमशः किसानी, उसके बाद बैल खरीदकर शुरू की बटैया की खेती और फिर खेत खरीदकर बना गृहस्थ। बाप ने इसपर कभी एतराज नहीं किया, बल्कि उसकी तारीफ ही करता था। लेकिन उसके बाद लड़के की अकड़ मानो बेहद

पैनी हो उठी। अपने अगल-बगल की जमीन को काट-काटकर उसने अपने खेत में शामिल करना शुरू किया। और इस खूबी के साथ काटने लगा कि जब श्रम के बटने की पीड़ा महसूस हुई तो पता चला, कब, कितने दिन पहले वह भ्रम कट गया है, यह वह भी नहीं बता सकता जिसकी कि जमीन है। जरूरत के वक्त, यानी जब खेती के दिन आते तो हठात् यह देखने में आता कि बलाईदास का छोटा खेत बड़ा हो गया है और दूसरे का बड़ा खेत छोटा हो गया है। और ऐसे में वह खेत वाला जब अपना खेत नापने आता तो बलाई उसे धक्के देकर हटा देता। कहो जोर-जबर्दस्ती की तो बलाई लाठी उठा लेता; पच बदा जाता तो अदालत का दरवाजा खुला है, कहकर उसे मानने से इनकार करता। बाप ने काफी समझाया-बुझाया लेकिन लड़के ने एक नहीं सुनी, बाप ने धर्म का डर दिखाया, लड़का लापरवाह हंसकर वहां से चल दिया। और उधर घर में भी तब तक सास पतोहू में अनबन। वैष्णव की उस गिरस्ती में पतोहू ने न केवल प्याज का प्रवेश कराया बल्कि मछली भी शुरू कर दी और बेटे ने उसका समर्थन किया। एक दिन जब उसकी मां और उसकी बीवी में झगड़ा हुआ, तो बलाईदास ने मां को गालियां सुनाईं और बीवी का हाथ पकड़कर घर से निकल गया। एक घर में रहना, एक हांडी का खाना नहीं चलेगा। पुराने घर के पास ही उसने नया घर बनवा लिया था। बाप ने चैन की सांस ली—महाप्रभु, आपने बचा लिया मुझे।

बलाईदास के काम में कोई रोक-टोक नहीं। उसकी हरकतों से सिर झुकाकर बाप ने अपनी मौत मांगी थी। दो बच्चे छोड़कर अचानक बलाई की बीवी चल बसी। उसके श्राद्ध में बलाई ने वैष्णव-भोजन कराया, मांस-शराब के साथ दोस्त-मित्रों को खिलाया पिलाया और इस बात को उसने छिपाने की कोशिश नहीं की। खुद नशे की हालत में बीवी के लिए रोते हुए रास्ते रास्ते कहता फिरा—अब इस जिंदगी से कोई मतलब नहीं

किसी बात में कोई सुख नहीं, मैं घर-द्वार छोड़कर चला जाऊगा। सन्यासी बन जाऊगा।

बाप ने महाप्रभु के चरणों में सिर कूटा। बेटे ने यहा जाकर उसे खूब फटकारा। बलाईदास ने कोई जवाब नहीं दिया, पर यह भी नहीं लगा कि उसने उसे कोई अहमियत दी। वह उठकर चला गया।

तीनेक दिन बाद एक दिन अहले सुबह बाप जैसे ही घर से निकला, तो देखा, बलाईदास के घर से गाव की ही नीची कौम की एक बदचलन औरत अक्तर निकलकर जा रही है। अपने घर से वह निकल भागी है। झूमर-पार्टी के साथ नाचती-गाती फिरती है। अस्मत का भी रोजगार करती है। कभी-कभी दो-चार दिन के लिए गाव में आ जाती है। इधर कई दिनों से वह बस्ती में ही थी।

बाप ने लड़के को पुकारकर जगाया। उसके पैरों पर अपना सिर पीटा। यह पाप मत कर। भला न होगा। व्यभिचार सबसे बड़ा पाप है।

बेटे का हाथ पकड़कर कहा—फिर से ब्याह कर ले तू।

बलाईदास तो उस समय अधा हो रहा था। शायद पागल हो रहा था। सिर्फ अक्तर ही क्यों, बस्ती में और भी जो दो-चार बदचलन औरत थी, उन सबके साथ उसने जीवन में मौज-मजे का जशन शुरू कर दिया। आरजू-मिन्नत बेकार गई। आखिर जो होना था, नतीजा वही हुआ—वैर-विरोध। और यह वैर-विरोध अन्त तक सदा के लिए जुदाई की सीमा पर आ पहुचा।

बाप ने सकल्प किया, बेटे को वह त्याज्यपुत्र कर देगा। उसे जो साल बीघा जमीन थी, देवता के नाम लिख दी और अपने पोतों को उसका भावी सेवायत महन्थ मुकर्रर किया। शर्त यह रक्खी, कि व्यभिचारी और दिमाग फिरा बलाईदास उनका अभिभावक नहीं होगा। उसके बाद सेवायत और पोतों की अभिभाविका उसकी स्त्री होगी। और उसकी

स्त्री के गहने तब भी लडके अगर नाबालिग ही रहे तो गाव के पच किसी वैष्णव को अभिभावक नियत कर देंगे। यह खबर जो सुनी, तो बलाईदास आकर खडा हो गया। बाप उसकी ओर को पीठ किए बैठे-बैठे बोला, इस घर से तू निकल जा। निकल जा ! निकल जा ! यह घर मेरा है। इस घर मे तू कभी कदम मत रखना। मेरे धर्म चचल होगे। मेरी मौत की घडी मे तू मेरे मुह मे पानी न डालना, मरने पर मुह म आग भी न दे पाएगा, श्राद्ध भी न कर पाएगा। ईश्वर मेरी दोनो आखें ले लें तो मैं जी जाऊ। तेरी शक्ल मुझे न देखनी पडे।

दूसरे ही दिन रात को बाप का खून हुआ। गरमी के दिन थे। बरामदे पर एक ओर बूढा सोया था, दूसरी ओर दोनो पोतो के साथ सोई थी बुढिया। गहरी रात मे किसी ने कुल्हाडी से बूढे के सर के दो टुकडे कर दिए। एक चीख हुई। बुढिया हडबडा कर उठ बैठी। उसने हत्यारे को आगन होकर निकलते देखा। पहचान गई, हत्यारा उसका बेटा था। सर पर दो बार चोट की गई थी। पहली चोट शायद सर के एक किनारे पडी, दूसरी ठीक बीच मे। मा ने गवाही दी—धुधला-सा अधेरा था, अभी अभी चाद डूबा था, उसी समय खूनी भागा। उसने खूनी को साफ देखा। खूनी उसका बेटा बलाई था। बलाईदास ने अविनाश बाबू को अपना वकील रखा था। फौजदारी मे उनका नाम था, इसलिए कुछ खेत बेचकर हजार रुपये का जुगाड करके आदमी भेजकर उन्हें ठीक किया था। अविनाश बाबू ने जिरह में कोई कसर नही रखी। मा की बस एक ही तान—'बाबा'—

मौका पाकर अविनाश बाबू ने डाटते हुए कहा था—नही। बाबा नहीं। बाबा-वाबा नहीं। हुजूर कहो।

मा ने कहा था, हुजूर, मा से बेटे को पहचानने मे भूल हो सकती है? मैं चालीस साल से उसकी मा हू। दोपहर को जब वह खेत से लौटता

था, तो मैं रोज़ उसकी पीठ मे तेल मालिश कर देती थी।

अविनाश बाबू बोले थे, लडके से तुम्हे दिनो से झगडा है। बीस बरसो से। उसके ब्याह के बाद से ही उससे अनबन चली आ रही है तुम्हारी। झगडा हुआ करता था। कहो, यह बात सच है या नही ?

मा ने कहा, किसी हद तक सच तो है। लेकिन वह अनबन नही था हुजूर। बीवी के लिए बडी कमजोरी थी उसे। बीवी के चलते ही उसने मछली-प्याज खाना शुरू किया था। इसी बात के लिए चूल्हा अलग हुआ था, इसी के लिए बकझक हुआ करती थी। मगर महज बकझक ही। और कुछ नही।

अविनाश बाबू बोले, नही। मैं यह कह रहा हू कि उसी चिढ़ से तुम कह रही हो कि तुमने पहचाना है। नही तो दरअस्ल तुमने पहचाना नही है।

मा बोली, पहचाना मैंने है हुजूर। चिढ भी मुझे नही थी। वह मेरा लडका ठहरा। धरम का मुह देखकर—मा यही पर रुक गई थी। गला रूधता आ रहा था उसका। अविनाश बाबू ने उसे रोने का मौका नही दिया। छूटते ही बोले—धरम का मुह देखकर ? अट शट मत बको। जबर्दस्ती रोने की कोशिश न करो। क्या कहना चाहती हो, सो कहो।

मा जो थी, वह भी कठिन औरत थी। अपने को जब्त करके उसने कहा, नही। रोऊगी नही। धरम का मुह देखकर मुझे सच-सच ही बताना पडेगा हुजूर। मेरे झूठ कहने से हो सकता है, वह इस इजलास से छूट जाए। लेकिन पर काल मे क्या होगा उसका ? मरना तो एक दिन पडेगा ही। और उसके बाप से मैं ही क्या कहूगी ? मैं सच ही कह रही हू। हुजूर सही विचार करके उसे छोडेंगे तो भगवान उसे छुटकारा देंगे और सजा देने से वही उसके पाप की सजा होगी। नरक मे उसे नही जाना पडेगा।

अविनाश बाबू ने अबकी अचूक हथियार का इस्तेमाल किया। जिरह की—पाप-पुण्य मानती हो तुम ?

मा ने कहा, क्यों नहीं हुजूर ! कौन नहीं मानता है, कहिए। नहीं तो रात दिन कैसे होता है ?

अविनाश बाबू ने डाट लिया—ठहरो। फिजूल की बकवास न करो। यह बताओ—आज से सैंतीस साल पहले, बर्दवान जिले में मजिस्ट्रेट के इजलास में तुमने एक बार इजहार दिया था ?

जरा चौंककर मुह उठाकर स्थिर नजरों से बुढ़िया ने अविनाश बाबू की तरफ ताका था।

सख्त गले से अविनाश बाबू ने कहा, बोलो। जवाब दो। बुढ़िया बोली, हा। दिया था।

—वह मुकदमा किस बात का था।

मैं अपने इस पति के साथ अपने बाप के घर से भाग आई थी। मेरे पिता ने इसीलिए मेरे पति पर नालिश की थी। उसी सिलसिले में मैंने गवाही दी थी।

—तुम्हारे पिता का नाम राधेहरी भटचारज था ? तुम ब्राह्मण की लड़की थी ?

—हा।

—और जिसके साथ घर से भाग निकली, वह किस जात का था ?

—सद्गोप। मेरे ही घर के पास उन सबका घर था। छुटपन में उसकी बहन के साथ खेला करती थी, उसके घर आया करती थी। उसके बाद प्यार हो गया। मैंने जब यह समझ लिया कि उसके बिना अब मैं जी नहीं सकती, तो उसके साथ घर से निकल गई। दोनों वैष्णव हो गए, उसके बाद ब्याह किया। मुकदमा उसी समय हुआ था।

—इजहार करते वक्त कहा क्या था तुमने ?

—कहा था कि मैं बाप नहीं चाहती, मा नहीं चाहती, धरम नहीं चाहती। इस आदमी के बिना मैं जी नहीं सकती। यही मेरा सब है—पाप, पुण्य, सब कुछ। इसके लिए अगर मुझे नरक भी जाना पड़े तो जाऊंगी मैं।

मुकदमे के सवाल-जवाब के वक्त अविनाश बाबू ने मा के चरित्र की इसी दिशा पर सबसे ज्यादा जोर डाला था, नारी-चरित्र की एक अजीब विशेषता का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा था, इस औरत का बीता इतिहास इसी बात की गवाही दे रहा है कि यह वही विचित्र नारी-प्रकृति है, जो नारी कि जीवन के सनातन पुरुष के लिए बाप, मा, जात कुल, धर्म-अधर्म सब कुछ को सहज ही छोड़ दे सकती है। ऐसी स्त्रियां जिन्दगी के आखिरी दिन तक शायद इस शर्मनाक मोह में डूबी और अन्धी बनी रहती है। अंधे प्रेम के प्रचंड कर्षण से ये बड़ी आसानी से सन्तान को भी छोड़कर चपत हो जा सकती है, चपत हो जा सकती है लालसा की राक्षसी भूख की ताड़ना से। यह औरत आज जब धर्म की बात बोलती है, तो सारी दुनिया इस पर हंसती है, लेकिन यह उसे समझ नहीं सकती। प्रतिहिंसा की धधकती ज्वाला में जिस धर्म को यह नहीं मानती, आज उसी धर्म की दुहाई दे रही है। सच बात तो यह है कि असली खूनी कौन है, यह पहचान नहीं सकी है। उतने कम समय में, जितने में कि पति की चीख सुनकर चौंककर वह जगी और मसहरी खिसकाकर उसके अन्दर से बाहर निकली, जब खूनी घर के दरवाजे से भाग रहा था—इतने-से समय में फिर अंधेरे में किसी का किसी को पहचानना गैर-मुमकिन है। यह पहचान नहीं सकी है। हो सकता है, इसने किसी को देखा ही न हो, इसके जगते-जगते हत्यारा भाग चुका था। उस उत्तेजित अवस्था में इसने जो देखा था, वह इसके मन की कल्पना की परिछाईं थी। अपने-जैसों। लड़का इसे शुरू से ही फूटी आखों नहीं सुहाता था। इसके

सिवा बेटे से बाप का विरोध हुआ था, लिहाजा इसे लगा कि खूनी बेटा ही है और अपनी कल्पना की आंखों इसने उसी को देखा। यह स्त्री मां नहीं है, यह मातृत्वहीन एक विचित्र ही चरित्र है। पापिन। आप सबने यह गौर किया होगा कि मां होते हुए भी बेटे को बाप का खूनी बताते हुए इसकी आंखों से बूंद भर आंसू नहीं टपका।

अविनाश बाबू भाषण सदा जोरदार देते हैं। उस मुकदमे में इसी तथ्य को नींव बनाकर उन्होंने प्राण डालकर भाषण किया था। इसके सिवाय दूसरा कोई रास्ता भी नहीं था। और अपने भाषण से उन्होंने जूरियों को प्रभावित भी कर लिया था। जूरियों ने इसी बात पर विश्वास कर लिया कि पति के प्रति जरूरत से ज्यादा आसक्त होने तथा ब्याह के बाद से बेटे का अपनी बीवी की ओर ज्यादा झुकाव होने के नाते अपनी सनातन ईर्ष्या की प्रेरणा से ही इसने अपने अजानते अपने बेटे को ही खूनी समझ लिया है। ऐसी स्थिति में, तुरत-तुरत नींद से जग जाने की हालत में अजाने हत्यारे को अपना बेटा समझ लेना बहुत स्वाभाविक है। फल-स्वरूप जूरियों ने संदेह के सुयोग यानी बेनिफिट ऑफ डाउट के नाते मुजरिम को निर्दोष करार दिया। लेकिन इस कठिन जज ने जूरियों से अलग राय रखते हुए मुजरिम को कसूरवार साबित किया था और अपने फैसले में उन्होंने अविनाश बाबू की दलीलों की तीखी आलोचना करते हुए उनकी धज्जियां उड़ा दी थीं।

अपने फैसले में इन्होंने लिखा था, इस मां की गवाही को मैं अकृत्रिम सत्य मानता हूं। मुजरिम पक्ष के विद्वान वकील महोदय ने उसके चरित्र को जिस तरह से कालिख पोत कर दिखाने की कोशिश की है, वह न केवल विचार का भ्रम है, बल्कि मुझे लगता है, वैसा जान-सुनकर किया गया है। गवाह देने वाली यह मां पूर्णतया स्वस्थ और स्वाभाविक चरित्र की स्त्री है। दैहिक आसक्ति की प्रबलता, जो कि एक रोग ही है, वह

कोई लक्षण ही इसके जीवन मे नही है। बल्कि मैने तो इसके जीवन मे एक बारीक और सुचारु विचारबोध ही देखा। अपनी जवानी के आरम्भिक दिनो मे अपने कुमारी जीवन मे इसने एक असवर्ण युवक को प्यार किया था। उस प्यार की भित्ति पर इसने दैहिक भूख को कभी प्रधान नही माना। पडोसी का बेटा, बचपन की सहेली का भाई, लम्बे दिनो की जान-पहचान, सम्पर्क—इन बातो ने उस प्यार को तिल तिल करके बढाया, मन से मन की आत्मीयता हुई। अचानक किसी सबल और खूबसूरत जवान को देखकर युवति-मन मे जो विकार पैदा होता है, युवती को पागल किए देता है, यह प्यार वह विकार नही है। यह उपलब्धि पूर्णतया मन की उपलब्धि है। उसी उपलब्धि के नाते जिस हृदय-आवेग के निर्देश से इसने घर, कुल, जात को छोड दिया था, समाजबोध की दृष्टि से वह पाप हो सकता है, लेकिन मानवीय विचार से वह अन्याय नही है, अधर्म नही है, अस्वास्थ्यकर नही है। सामाजिक और मानसिक विचार चूकि हर समय एकमत नही हो सकते इसीलिए आज के कानून मानविक विचार की नीव पर गढे गए हैं। समाज के विचार से जो पाप है, उसी सूत्र के अनुसार वह हर स्थिति मे कानून की निगाह मे दडनीय अपराध नही माना जाता। विद्वान वकील ने जिसे दैहिक लालसा कहा है, कानून की दृष्टि से मेरे विचार मे वह सर्वजयी प्रेम है—पैशन ऑफ लाइफ, उसके लिए आखिरी कीमत चुकाने के बावजूद वह पछता नही रही है, शर्मा नही रही है। और अपने परवर्ती जीवन के आचरणो से उसने एक ब्याहता साध्वी स्त्री के सभी कर्तव्यो को बडी निष्ठा के साथ निबाहा है। इस मां ने जिस पीडा के साथ धर्म का मुह देखकर अपने बेटे के खिलाफ गवाही दी है, मैं उसे 'डिवाइन' कहूगा—स्वर्गीय पवित्रता से पवित्र। बडे आश्चर्य की बात है कि विज्ञ वकील महोदय ने इस अभागिन मा को गवाही देते समय उसकी वेदना विडम्बना और धर्मज्ञान अथवा सनातन नीतिज्ञान के

दर्द को मानो जान-बूझकर ही गौर नहीं किया। उन्होंने कहा, गवाही देते हुए यह जानकर भी कि बेटे को फांसी हो सकती है, उसकी आंखों से एक बूंद आंसू नहीं टपका। हाईकोर्ट ने ज्ञानेन्द्रनाथ के फैसले को ही मान लिया था।

ज्ञानेन्द्रनाथ ने मुजरिम को यानी उस युवक को प्राणदण्ड सुनाया था। सजा का उनका यह आदेश भी ठीक साधारण कोटि के आदेशों में नहीं आता। असाधारण ही कहना होगा। किसी दूसरे मुकदमे में दुबारे वहां जाने पर अविनाश बाबू ने उसे सुना था। तीन दिन तक जज साहब की अजीब एक सांय-सी हालत रही। तीन-तीन रात लगातार वे सोए नहीं। सारा फैसला लिखकर सजा के आदेश की कई एक पंक्तियां लिखने को छोड़ वे बेचैनी से चहलकदमी करते रहे। इधर ऊंचे ओहदे वाले अधिकारियों में इसके लिए एक उद्वेग-सा हो गया था। ज्ञान बाबू के उनींदे रात बिताने की बात उनके कानों तक पहुंचने से बाकी नहीं रही थी। सिविल सर्जन मजिस्ट्रेट साहब के पास आए थे, उनके पीछे ल्गा पुलिस अधीक्षक आए। जो मनुमडल पदाधिकारी थे, वह भी आए। आखिर में नये जज साहब क्या फांसी की सजा सुनाएंगे ? हमें तो खड़े रहकर उस हुक्म का पालन करना पड़ेगा ! भोर-भोर में, धुंधले अन्धेरे में फांसी की खिड़की अजीब लगेगी। लगेगा, जैसे मृत्युपुरी का अचानक खुला हुआ दरवाजा हो। लगेगा, दरवाजे के चारों ओर के चौखट से किवाड़ के पल्ले गायब हो गए हों, मौत के खुले जबड़े जैसा खुला दरवाजा हा-हा कर रहा है। उसके बाद दूर से शायद उस बदनसीब की करुणा भरी चीख सुनाई पड़ेगी। शायद हो कि हाड़ मास के एक विह्वल बोझे को झुलाते हुए लाए। ओह ! उसके बाद सजा का हुक्म पढ़ना पड़ेगा। मुजरिम के माथे पर काली टोपी पहना दी जाएगी। ओ !

सिविल सर्जन ने कहा था, इस जेल में पिछले तीस साल से किसी

को फासी नहीं पड़ी है। गैलोज तक बर्बाद हो चुका है। सिर्फ एक टीला-सा है। सब कुछ नये सिरे से ही तैयार करना पड़ेगा।

मजिस्ट्रेट साहब भी विचलित हुए थे।

आपस में राय-सलाह करके वे लोग ज्ञानेन्द्र बाबू की कोठी पर पहुंचे थे। इशारे से आग्रह भी किया था।

ज्ञानबाबू ने कहा, तीन दिन से मैं सोया ही नहीं। सिर्फ सोचता रहा।

मजिस्ट्रेट ने कहा, मैंने सुना है। किसी को मौत की सजा सुनाने से बढ़कर पीड़ा देनेवाला कर्तव्य दूसरा नहीं।

ज्ञानेन्द्र बाबू बोले, मेरी पत्नी भी छटपटा उठी हैं। वह मानो मेरी तरफ ताक नहीं पा रही हैं। मगर मैं क्या करूं।

वास्तव में सुरमा देवी बहुत विचलित हो पड़ी थी। घबरा कर पूछा था—तुम क्या फासी का हुक्म दोगे?

पहले तो ज्ञानेन्द्र बाबू कोई जवाब न दे सके। बड़ी देर के बाद कहा मुजरिम की मां गवाही में जो कह गई है, उसे सुनने के बाद उस सजा के सिवा और क्या कर सकता हू, कहो?

सुरमा देवी इसके बाद भी कुछ कहें? फिर भी कहा था उन्होंने, तुम उस मां की ही सोच देखो! उस अभागिन के और रह क्या जाएगा?

—धर्म!—ज्ञानेन्द्र बाबू ने कहा—हिन्दू धर्म, मुस्लिम धर्म, ईसाई धर्म नहीं सुरमा, सत्य धर्म।

कुछ क्षणों के बाद सिर उठाकर एक अजीब हंसी हंसते हुए उन्होंने कहा था, यह मैंने मुझे सरकार सिखा गई। इतिहास में जो बड़े लोग, महा-पुरुष हो गए हैं, वे इसका पालन करते आए हैं, मैंने पढ़ा है। इस युग में महात्मा गांधी को देखा है, मुग्ध हो गया हू। लेकिन सोच देखा है, यह वही कर सकते हैं, जो महत् हैं, वृहत् हैं। लेकिन इस औरत ने यह दिखा

दिया कि नहीं, ऐसे-वैसे लोग भी कर सकते हैं। मुझे आज बड़ा भारी भरोसा मिला।

और, इतना कहकर ही वे लिखने बैठ गए थे। एक ही सांस मे वे कई पंक्तियां लगभग पूरी कर गए थे। फैसला निष्ठुर नहीं, वह दुनिया के सुख-दुःख के दायरे से ऊपर है। जस्टिस इज डिवाइन।

जज साहब ने जिलाधिकारी, सिविल सर्जन, पुलिस अधीक्षक—इन सबको भी यही बात कही थी, इस स्थिति मे दूसरी कोई सजा नहीं है। मुझसे नहीं हो सकता। आई काण्ट!

[५]

अविनाश बाबू ने बड़े जतन से मामले को सजा लिया था। अवश्य सजाने का काम कुछ नहीं था, फिर भी एक जगह ऐसी थी, जिसकी वजह से पूरे मुकदमे के बारे मे उल्टा ख्याल हो जा सकता था। उसके लिए वह तैयार ही थे। वह खूब समझते थे कि विचारक के आसन पर बैठे उस आदमी की जो स्थिर दृष्टि सामने के खुले दरवाजे से बाहर के उन्मुक्त फैले हुए प्रांगण पर लक्ष्यहीन जैसी बिछी है, जिसे देखकर यह लगता है कि इस इजलास की किसी भी चीज से उनका क्षीण-सा भी सम्बन्ध नहीं है, उस दृष्टि के साथ उदास वैरागी-सा उनका मन जाने कहां चला गया है—घटनाओं के वर्णन मे कहीं पर कोई असंगति होने से या घटना के ठीक महत्त्व के स्थल पर वह आदमी सजग-सचेतन होकर कह उठेगा—येस्! या कि चौंककर पलटकर ताकेंगे, उनकी दोनों भवें प्रश्न की व्यंजना से सिकुड़ आएंगी और वह पूछेंगे—व्हाट? क्या कहा मिस्टर मित्रा? डिड यू से—?

अविनाश बाबू का अन्दाज गलत नही निकला । आज भी जज साहब ने चकित होकर अविनाश बाबू की तरफ ताकते हुए पूछा, व्हाट ? क्या कह रहे हैं मिस्टर मित्रा ? आप यह कह रहे हैं कि छोटा भाई खगेन्द्र घोष, जो मारा गया है, वह मुजरिम बड़े भाई नगेन को बुलाकर ले गया था ? नगेन, यह मुजरिम, बुलाकर नही ले गया था ?

अविनाश बाबू मन ही मन खुश हुए । यही सवाल वह चाह रहे थे । उन्होने हामी भरते हुए गरदन हिलाई—येस् योर आनर । यही वास्तविक घटना है । मैंने यही कहा है ।

ज्ञानेन्द्र बाबू ने कहा, दैट्स आलराइट । गो आन प्लीज ।

अविनाश बाबू कहते गए, येस्, योर आनर, घटना का जो अन्जाम है, उसमे साधारण नियम से मुजरिम नगेन उसे बुलाकर ले गया था, यही होने से घटना सीधी होती । और, पहले कहे मुताबिक नगेन की ही बात थी बुलाने आने की । लेकिन वह नही आया ।

धीर गले से अविनाश बाबू एक-एक करके अपनी बात कहने लगे । कोई आवेग नही, कोई उत्ताप नही, सिर्फ युक्तिसगत विश्लेषण—नगेन नही आया । बुलाने की बात उसीकी थी लेकिन वह नहीं आया, नही बुलाया । योर आनर, मुजरिम की सोची सोचायी योजना का यही बडा सूक्ष्म और कौशल भरा अश है । दूसरी ओर यही चतुराई ही उसकी नीयत को पकडा देना है, बडी आसानी से पकडा देता है । साखी-सबूत से यह तथ्य बडी आसानी से खुल जाएगा । अवश्य इसकी एक दूसरी व्याख्या भी हो सकती है, लेकिन उससे भी हम उसी एक निष्कर्ष पर आते हैं । योर आनर, सारी बातो को यथार्थ पृष्ठभूमि पर रखकर उनपर गौर करना होगा । पृष्ठभूमि क्या हुई ? तो पृष्ठभूमि है बगाल के गवई गाव के एक खेतिहर की गिरस्ती । मुकुल घोष एक खेतिहर है । अपने देश के पचास साल पहले के खेतिहरो मे से एक । उन दिनो का जो धार्मिक

विश्वास था, सामाजिक विश्वास था, उसपर आस्था रखनेवाला। एक लड़का, एक लड़की। लड़का बचपन से ही अजीब स्वभाव का। साक्षी-सबूतों से यह साबित होता कि यह लड़का पहले बड़ा शैतान था। बाप ने अपने इकलौते बेटे को बड़ी आशा से पढ़ने के लिए स्कूल में दाखिला कराया था। उसकी जुर्रत से बाहर होने के बावजूद बेटे को आदमी जैसा आदमी, भला और शिक्षित बनाने की अपनी मुराद को उसने आंच नहीं आने दी। कई मील के फासले पर एक उन्नतिशील गांव के स्कूल में दाखिल कराकर उसे छात्रावास में रख दिया था। स्कूल के कागज-पत्तरों से पता चलता है, वह लड़का अन्य कई शैतान लड़कों के साथ मिलकर स्कूल में लगभग रोज ही डाट-फटकार का भागी बन गया था। दो साल के बाद ही वह स्कूल से निकाल बाहर किया गया। उसका कारण मालूम है? उसका कारण है, चोरी और हत्या का अपराध। हत्या आदमी की नहीं, जानवर की। छात्रावास के समीप ही एक भेड़ बकरी के व्यापारी का गुहाल और खलिहान था। उस गुहाल से नियमित रूप से—दो-चार दिन के बाद—भेड़ बकरी गायब हो जाया करती थी। उसका कहीं कोई पता नहीं चलता था। खून की निशानी नहीं मिलती थी, कहीं उसकी चीख-पुकार नहीं सुनाई पड़ती, किसी प्रकार जानवर के आने-जाने की बू-बास नहीं पाई जाती। अन्त में बड़ी-बड़ी सतर्कता के बाद उसी गिरोह का एक छोटा लड़का पकड़ा गया। उसने कबूल किया कि यह कारस्तानी उन्हीं लोगों की है। भेड़-बकरियां चुराकर वे सब रात के सन्नाटे में दावत किया करते थे। उनमें से एक लड़का गजब ढंग से माल उड़ा देने में पटु था। वही है यह मुजरिम नगेन घोष। उन लोगों ने अन्दर दाखिल होने के कुछ चोर रास्ते बना रखे थे। एक खिड़की को इस तरह से उखाड़ कर रखा था कि देखकर कोई समझ ही नहीं पाता कि खींचने ही वह खिड़की निकल आती है। उसी रास्ते से रात को नगेन अन्दर घुस

जाता था और जो भी भेड-बकरी सामने मिल जाती, उसी को झट गला दबोचकर धर दबाता, और फौरन गले को उमेठ कर घुमा देता। इस काम मे वह सिद्धहस्त हो चुका था। किसी भी दूसरे आदमी से ऐसा करते नही बनता। इसी वजह से हेडमास्टर साहब ने उसे स्कूल से निकाल दिया था। उसका बाप इसके लिए बडा दुखी था। लडके की उसने बडी लानत-मलामत की। वैष्णव थे वे। यह अपराध उनके लिए महापाप था। इस अपराध ने उसके बाप को इतनी पीडा पहुचाई कि वह बेटे से प्रायश्चित्त कराए बिना नही रह सका। उसका सर घुटवा दिया। शास्त्र के बताए नियम से प्रायश्चित्त! लडका उसी रात मे घर से गायब हो गया और पूरे बारह साल तक लापता रहने के बाद लौट आया। उस समय उसकी उम्र कोई अट्ठाईस उनतीस की होगी। घोर आनर, वह लौटा सन्यासी के बाने मे। उस समय इस मामूली खेतिहर की शात गिरस्ती म परिवर्तनशील समय के स्रोत से बहुत कुछ टूट-फूट चुका था, नया बहुत कुछ गढा भी गया था। नगेन की मा मर चुकी थी, उसकी बहन विधवा हो गई थी, कही वश का लोप ही न हो जाए, इस डर से सुबल घोष ने फिर से ब्याह कर लिया था और एक नन्हे शिशु को छोडकर उसकी वह पत्नी भी परलोक सिधार चुकी थी। सुबल घोस उस समय किसी कठिन रोग का शिकार हो खाट पकडे हुए था। उस बच्चे को पाला-पोसा सुबल की विधवा बेटी, मुजरिम नगेन की सहोदरा ने।

अपने खोए हुए बेटे को पाकर सुबल आनन्द से अधीर हो उठा और उसे सन्यासी के बाने मे देखकर रोने-रोने अकुला उठा। बोला, इस बाने को छोड दे तू।

नगेन ने कहा, नही!

ब,प ने कहा, अरे, तू होगा सन्यासी। शायद हो कि गुरु तुझे

परमारथ मिले, मोक्ष मिले। लेकिन अपने पितर-पुरखों की यह वासभूमि, हमारा यह वंश ? यह जहन्नुम में जाए ? नगेन ने कहा, क्यों, खगेन तो है ही।

सुबल ने कहा, छ साल का लड़का, वह बड़ा होगा, आदमी बनेगा, तब तक आदमी के अभाव से घर माटी चूमेगा, दरवाजा उखड़ेगा, जगह-जमीन, धान-चावल जो थोड़ा-सा है, उसे लोग-बाग हड़प कर राह का भिखमंगा बना छोड़ेंगे। वह विधवा युवती घोष खानदान की लड़की है, तेरी मां के पेट की बहन। उसकी क्या दशा होगी, सोच देख। बुरा ही सोच।

नगेन ने कहा, खैर। खगेन को पालकर, उसका शादी-ब्याह कराके, उसकी गिरस्ती बसाने तक मैं यहां रहा। लेकिन मुझे और कुछ मत कहना।

सरकारी वकील अविनाश बाबू ने हाथ के कागजात टेबिल पर रख कर कचहरी की दीवाल-घड़ी की तरफ ताका। घड़ी की सुई पांच की ओर जा रही थी। मेज पर कागज दबे गिलास को उठाकर थोड़ा-सा पानी पिया। और फिर शुरू कर दिया—योर आनर, मनुष्य में ही जीवन-शक्ति का सर्वोत्तम रूप है। जड़ वस्तु में जो शक्ति अंधी है, बेअख्तियार है, जन्तुओं में जो शक्ति प्रवृत्ति के आवेग से ही परिचालित होती है, मनुष्य में वही शक्ति मन, बुद्धि और हृदय की अधिकारिणी हुई है। जन्तु की प्रकृति का परिवर्तन नहीं होता, सरकस के जानवरों को बहुत डरा धमकाकर, बहुत-सी मनोली वस्तुएं खिलाकर भी उनके सामने चाबुक और बन्दूक को सदा तैयार रखना पड़ता है। परिवर्तन एक मात्र मनुष्य में ही होता है, उसकी प्रकृति बदलती है। घात-प्रतिघात, शिक्षा-दीक्षा, नाना कार्य कारण से न केवल उसकी प्रकृति का परिवर्तन होता है, बल्कि उसी परिवर्तन के बीच वह अपने को महत्तर प्रकाश में प्रकाशित करता

चाहता है। अधिकाश क्षेत्र मे यही नियम है। अवश्य उल्टी दिशा मे भी गति देखी गई है, लेकिन बहुत कम।

ज्ञानबाबू के गम्भीर चेहरे पर हसी की एक लकीर खिच आई। अविनाश बाबू आदमी चतुर हैं। असाधारण चालाक। अभी अभी जो बातें उन्होने कही, वे बातें उनकी यानी ज्ञानबाबू की हैं। कुछ दिन पहले यहा के पुस्तकालय मे भाषण देते हुए उन्होने कही थी।

अविनाश बाबू ने कहा, उसके उस समय के आचार आचरण, काम-काज के बारे मे हम जो सबूत मिलते है, उनसे मै यह मानता हू कि मुज-रिम नगेन की प्रकृति मे परिवर्तन हुआ था और वह परिवर्तन सत् और शुद्ध था। उसके बारह वर्षों के अज्ञातवास का इतिहास हमे नही मालूम, लेकिन उसके बाद के नगेन को देखकर यह कहना होगा कि अज्ञातवास की उस अवधि मे साधु-सन्यासियो की सगत और तीर्थाटन ने बेशक उस पर एक पवित्र प्रभाव डाला था। ऐसा न होता, यानी यदि वह उसी बर्बरता मे रहा होता तो अपने बाप के मरने के बाद उस छ साल के लडके खगेन को हटा कर निष्कटक मजे म हो सकता था। उसके बदले उसने अपने उस सौतेले भाई को कलेजे से लगा लिया। यही नही बाप की मृत्यु के कुछ ही दिन बाद उसकी विधवा बहिन गुजर गई। इसके बाद इस नगेन ने ही मा और बाप दोनो का स्नेह देकर उसे पाला-पोसा। देखने मे वह लडका बडा ही खूबसूरत था। नगन खगन को खगेन कहकर नही पुकारता, गोपाल कहा करता था। घुघराले बालो से भरा सर, कच्चा रग, बडी-बडी आखें। देखने म सचमुच ही वह गोपाल जैसा था।

जरा थमकर हसते हुए अविनाश बाबू ने कहा एक्सक्यूज मी योर आनर, मैं इस मामले मे जरा कविता कर गया। बट आई ऐम नॉट आउट ऑफ माइ वाउड्स, योर आनर। क्योकि···

ज्ञानबाबू ने कहा, जरा सक्षेप कीजिए।

अविनाशबाबू बोले, यह मुकदमा बड़े अजीब ढग का है योर आनर। मुझे लगता है, वर्तमान परिस्थिति मे ऐसे पुखानुपुख वर्णन और उसके विश्लेषण के बिना हम लोग सही सिद्धान्त पर नही पहुच सकते। मुजरिम ने खुद कबूल किया है कि नाव उलट जाने से दोनों नदी में डूब गए थे। छोटा भाई तैरना नही जानता था, उसने बड़े भाई को जकड लिया। बड़े भाई मुजरिम नगेन ने उस हालत मे अपने को उसके शिकजे से छुडाने के लिए आत्मरक्षा की पाशविक प्रवृत्ति की ताडना से उसकी गर्दन की नली को धर दबाया। और कुछ ही क्षणो में छोटे भाई की पकड से छूटकर किसी तरह से बहता हुआ नदी की उस बाक पर आ लगा। दूसरे दिन उसके छोटे भाई की लाश वही पर उससे कुछ और उतर कर पाई गई। खगेन के पोस्टमार्टम की जो रिपोर्ट मिली है, उसमें भी यह जिक है कि खगेन के गले मे कठनाली के दोनो ओर कुछ जख्म के निशान थे। डाक्टर का कहना है, ये जख्म नाखून के हैं। लाश के पेट मे पानी बहुत कम मिला है वह पानी मे डूबकर मरा होता तो पेट मे कहीं ज्यादा पानी पाया जाता। डाक्टर इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि यह मौत दम घुटने से हुई है और कठनाली को कसकर दबाने की वजह से ही उसका दम घुटा था। अब हमें यह विचार देखना है कि मुजरिम नगेन ने मन की किस अवस्था मे उसका गला धर दबाया था। उसकी उसी मानसिक अवस्था में निर्भ्रांत निर्णय पर ही निर्मूल विचार निर्भर करता है। थोडी-सी चूक से भी पैंसले की पवित्रता, उसकी महिमा कलकित हो सकती है, नष्ट हो सकती है। हमलोग एक बेकसूर मामूली-से आदमी को मृत्यु-पीडा से अधीर हो मानवीय ज्ञान खोकर आत्मरक्षा की पाशविक प्रवृत्ति के वशीभूत होकर गलती से उसे मौत की सजा देने की भूल कर सकते हैं। दूसरी ओर गलती से अत्यन्त कौशलपूर्ण, अत्यन्त जटिल रहस्य का पता न पा सकने के कारण निष्ठुरतम पाप के पापी को छुटकारा देकर मानव

समाज का चरमतम अमगल कर सकते है। घोर आनर सिंह की खाल ओढे हुए गधे दुनिया मे बहुत है, परन्तु मानव की खाल ओढे नरघाती पशु या विषधर की सख्या नही अधिक है। सिंह की खाल ओढे गधे पर से उस खाल को हटा देने से ही समाज खतरे से खाली हो जाता है, समाज मे कौतूहल जगता है, मनुष्य के चमड से ढके पशु सरीसृप की वह खाल हटा देने से समाज आतकित होता है, वैसे म समाज को उसके हाथ से छुटकारा दिलाने की बहुत बडी जिम्मेदारी समाज पर ही आ जाती है। इसीलिए मुझे बीते दिनो से लेकर इस मुजरिम के आज तक के क्रिया-कलाप का विशद रूप से विश्लेषण करना पड रहा है। धर्माधिकरण मे मनुष्य होते हुए भी विचारक मनुष्य से बहुत ऊचे रहते हैं, मोटे प्रमाण-प्रयोग सम्मत फैसला करने से भी उनका दायित्व बडा है। उन मोटे प्रमाण प्रयोगो के परदे को फाडकर सही सत्य का पता लगाकर वैसा ही विचार करना होगा, जिसे हम डिवाइन जस्टिस कह सकें।

इजलास के बाहर घडियाल पर चोट पडने लगी—ढन् ढन् ढन् ढन। इजलास के अन्दर की घडी म उस समय पाच बजने मे दो मिनट की देर थी।

अपनी घडी की तरफ देखकर ज्ञानबाबू ने कहा, मुकदमा कल के लिए मुल्तवी रहा।

उन्होंने एक बार मुजरिम की तरफ देखा। तन्दुरुस्त और मजबूत नगेन घोष फिर अपलक आखो से उनकी ओर ताक रहा था। अजीब स्थिर निगाह। उस आदमी की शकल जैसे पत्थर की बनी हो। उस पर कोई अभिव्यक्ति नही।

वह आदमी थाने से एस० डी० ओ० का इजलास और यहा तक कबूल करते हुए एक ही बात कहता आ रहा है। नाव से नदी पार होते वक्त हवा जरा जोरो पर थी, बीच नदी म आगे जाने पर ही हवा ने

और जोर पकड़ा था, खगेन तैरना लगभग जानता ही न था, डरकर वह चीख उठा, उसने हाथ बढ़ाकर खगेन का हाथ पकड़ा और कहा, डर किस बात का ? लमहे में खगेन नाव के उस ओर से इधर आ गया और उसे कसकर पकड़ लिया। कि छोटी-सी नाव उलट गई। पानी में खगेन ने उसे जकड़ लिया। पहले तो उसने अपने को छुड़ाने की कोशिश की, लेकिन उसने जितना ही अपने को छुड़ाना चाहा, खगेन ने उसे उतना ही कसकर पकड़ा। उसकी छाती फटी जा रही थी, वह पानी पीता जा रहा था कि उसका हाथ खगेन के गले पर जा रहा। उसने उसका गला धर दबाया। खगेन ने उसे छोड़ दिया उसे यह पता नहीं कि खगेन उसीसे मरा है या नहीं। किनारे पर आकर वह कुछ देर तक लेटा पड़ा रहा। उसके बाद किसी कदर उठकर घर आया। रात में जब वह आपे में आया तो उसे लगा, शायद खगेन मर गया। सवेरे उठकर वह थाने पर गया। बयान दिया। इसकी सजा क्या है, उसे नहीं मालूम भगवान जानते हैं। जो भी सजा हो, जज साहब दें, वह उसे झेलेगा।

भगवान जानते हैं। हाय रे अभागा ! खुद उसने क्या किया, वह आप नहीं जानता। भगवान को गवाह रखता है। मगर भगवान तो गवाही देते नहीं और विवेचक को डिवाइन जस्टिस देनी होगी।

दो

डिवाइन जस्टिस !

अविनाश बाबू ने इस बात का व्यवहार मानो अभिप्रायमूलक भाव से ही किया।

इस बात का व्यवहार शायद औरो से ज्यादा वही करते है। जहा स्थूल प्रमाण-प्रयोग ही एकमात्र सहारा हो, आदमी जब तक स्वार्थ के अन्वेषण मे झूठ का व्यवहार करने मे हिचकता नही, तब तक डिवाइन जस्टिस शायद असम्भव है। सरल, सहज, सभ्यता से वंचित लोग झूठ बोलते हैं तो उस झूठ को पहचाना जा सकता है, लेकिन सभ्य-शिक्षित आदमी जब झूठ बोलते हैं तो वह झूठ सत्य से भी प्रखर हो उठता है। पारा का प्रलेप लगा काच जब दर्पण बन जाता है तो उस पर प्रतिबिम्बित सूरज की छटा आखो को सूरज की तरह ही अन्धा किए देती है। जज, जूरी, सबको धोखा खाना पडता है बेबस की नाईं।

जस्टिस चटर्जी कहा करते थे—ही इज गॉड, गॉड एलोन, ही कैन डू इट। हम नही कर सकते। अमोघ न्याय-विधान के कर्तव्यबोध और न्याय की महिमा को याद रखते हुए प्रमाण-प्रयोगो को सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव

से विश्लेषण करके, भावावेग को जरा भी गुंजाइश न देकर हम सिर्फ विधान के मुताबिक विचार कर सकते हैं।

किसी दोषी स्त्री को मौत की सजा सुनाते हुए यह बात कही थी उन्होंने। सुरमा उन्हीं की बेटी है। वह रो पड़ी थी, एक औरत को फांसी पर लटका दीजिएगा पिताजी ?

चटर्जी साहब ने कहा था, अपराध के क्षेत्र में स्त्री और पुरुष के किए दोष की तुलना में तिल भर की भी कमी-बेशी नहीं होती है बिटिया। सजा के लिए भी स्त्री और पुरुष के लिए कोई भेद नहीं होता। इस स्थिति में ईश्वर को स्मरण करके यह सजा दिए बिना मेरे लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है।

ज्ञानेन्द्रनाथ ने विचार की धारा पद्धति उन्हीं से सीखी थी। वही इनके गुरु हैं। ज्ञानेन्द्र बाबू ईश्वर को नहीं मानते। ईश्वर का स्मरण नहीं करते। ईश्वर, भगवान, यह नाम बड़ा अच्छा है। यह सिर्फ नाम ही है। वे गवाही नहीं देते, विचार भी नहीं करते। लेकिन उस नाम में एक गजब की पवित्रता है। विचार की दुनिया में एक आदर्श है, वे उसी का स्मरण करते हैं। इसीलिए वह डिवाइन जस्टिस है। लौटते वक्त अपनी गाड़ी में बैठे मन ही मन वह बार-बार उच्चारण करते जा रहे थे—डिवाइन जस्टिस ! डिवाइन जस्टिस !!

स्थूल प्रमाण प्रयोगों के आवरण को भेदकर सही सत्य का आविष्कार करके ऐसा ही फैसला करना होगा, जो भूल-रहित हो, जिसे डिवाइन जस्टिस कह सकें।

अविनाश बाबू की बातें कानों के पास गूंज रही थी।

डिवाइन जस्टिस ! डिवाइन जस्टिस !!

जज साहब की स्त्री सुरमा देवी कोठी के बगीचे में बेंत की कुर्सी-मेज सजाकर बैठी हुई किताब पढ़ रही थी। दिन भर बदली घिरी थी।

कोई घंटा भर हुआ, बदली छटकर आकाश निर्मल हुआ, धूप निकली। उस धूप की शोभा की तुलना नहीं। नहाई हुई हरी-भरी धरती झलमला रही थी। सामने खुला हुआ पश्चिम दिगंत। कोठी शहर के पश्चिम तरफ तक टीले पर है। कोठी के पश्चिम उधर आबादी नहीं है, दो एक मील एक कोई बस्ती या जंगल कुछ भी नहीं है। कंकरीले मैदान में तीन-चार पीपल के और एक ताड़ का पेड़ बिखरा हुआ-सा यहां-वहां खड़ा है और उस मैदान को बीच से चीरती हुई एक पहाड़ी नदी चली गई है। अभी बरसात में वह नदी दोनों कूलों में भरी हुई बह रही है। उसीके उस ओर तक मैदान के दिगंत के माथे पर सिंदूर-सा टुकटुक लाल अस्तगामी सूरज। धूप की लाल आभा धीरे-धीरे और, और गाढ़ी होती जा रही है। गाड़ी आ खड़ी हुई। अरदली ने उतरकर दरवाजा खोल दिया और हटकर बाअदब खड़ा हो गया। ज्ञानेन्द्र बाबू इसी बीच गहरी चिंता में डूब गए थे। स्तब्ध-से गाड़ी के अन्दर बैठे थे। अरदली ने धीमे से आवाज दी--हुजूर!

ज्ञानेन्द्र बाबू चौंके। ओ! कहकर वे गाड़ी से उतरे। पति को देख-कर सुरमा देवी खड़ी हो गईं। चाय की मेज पर किताब रखकर आगे बढ़ आईं। पति की ओर देखकर गाढ़े स्वर से बोलीं, सेशन कब तक चलेगा?

जरा रुककर ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा, ज्यादा दिन नहीं। मामला है तो पेचीदा, लेकिन गवाह कम हैं। ज्यादा दिन नहीं चलेगा।

बगीचे में चाय का टेबिल देखकर बोले, बगीचे में चाय की मेज रखी है?

सुरमा ने कहा, बारिश नहीं आएगी। देख रहे हो न, कैसी रंग-मला है?

हां। अनोखी शोभा हुई है। अब उन्होंने आसमान की ओर ताका।

कहकर जब सुरमा ने उनकी निगाह उधर फिराई, तब निगाह फिरी। रक्त-सध्या ! रक्तसध्या से जीवन की एक स्मृति जुडी है। सुरमा से जिस दिन उनकी पहली मुलाकात हुई थी, उस दिन आकाश मे रक्तसध्या थी।

सुरमा ने कहा, जरा जल्दी आओ।

—यैस, टाइम ऍड टाइड वेट फॉर नन्। ज्ञानेन्द्र बाबू हँसे।

—सिर्फ इसीलिए नही। कविता सुनाऊगी।

—अभी आया।

ज्ञानेन्द्र बाबू हँसे। गम्भीर और थका हुआ चेहरा थोडा दमक उठा। खुश थे वह। बडे दिनो के बाद सुरमा ने लिखकर कविता सुनाने की कही है। सुरमा कविता लिखती है। पढती थी, तभी से लिखती है। उस समय हमी की कविता लिखती थी। उस समय नाम हुआ था। सुरमा से प्रथम परिचय के बाद उन्होने भी कविता लिखनी शुरू की थी। कविता मे ही सुरमा की कविता का जवाब देते थे। और यह आविष्कार किया था कि वह भी कविता लिख सकते हैं। कम से कम लिख सकते थे। जजी के दफ्तर मे उनका वह कवित्व पत्थर दबी घास जैसा ही मर गया है। लेकिन सुरमा के जीवन मे बारहो महीने फूलने वाले पेड की तरह काव्य-रुचि और कवि-कर्म फूलता ही आ रहा है, फूलता ही जा रहा है।

शायद हो कि सुरमा अनगिनती फूल खिलाती है, किन्तु फूल खिलते हैं उनकी नजर की ओट मे, उनकी सासो के दायरे के बाहर। ऐसा कब से हुआ, यह याद नही, पर हो गया है। हठात् एक दिन उन्होने यह ईजाद किया था कि सुरमा अब उन्हे कविता नही सुनाती, लेकिन लिखती है। सुरमा से पूछा था। सुरमा ने जवाब दिया था, हंसी की कविताए लिखती थी, हंसी मजाक मे ही सुनाती थी। अब वह सब नही लिखती-विखती। ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा था, जो लिखती हो, वही सुनाओ।

सुरमा ने कहा, सुनाने लायक जिस दिन होगी, उस दिन सुनाऊगी।

ज्ञानेन्द्रनाथ ने जरा ज़ोर किया था। सुरमा बोली थी, इसके लिए ज़ोर न करो। प्लीज!

कुछ ही देर के बाद ज्ञानेन्द्रनाथ बात को भूल गए थे। बारहों महीने फूल खिलाने वाले पौधे की तरह ही है सुरमा का जीवन, उसमें फूल ही खिलता है, फल नहीं लगता! सुरमा के कोई बाल-बच्चा नहीं।

आज सुरमा ने कविता सुनानी चाही है। चिन्ता के भार से भारी मन कुछ हल्का हो उठा। जैसे भारी बोझ ढोने वाले के पसीने से लथपथ शरीर में थोड़ी ठण्डी हवा की छुअन लगी।

सुरमा की ओर एक बार उन्होंने अच्छी तरह से देखा। परिणत यौवना इस सुरमा में पहले दिन की उस तरुणी सुरमा को मानो नहीं देख पा रहे हैं वह। वह तेजी से बगले की तरफ चले गए। सुरमा देवी पश्चिम क्षितिज की ओर ताकती हुई खड़ी ही रही।

सुरमा के भी मन में आज वह स्मृति गुंजन कर उठी है। बड़ी देर से। साढ़े चार बजे से ही बाहर बरामदे में आकर दूर की उस भरी हुई नदी की तरफ ताकती हुई बैठी थी वह। धीरे-धीरे निःशब्द आयोजन से आसमान में रक्तगंधा जाग उठी थी। उनकी नज़र उस समय उधर नहीं खिंची थी। अचानक रेडियो पर एक गीत बज उठा। उस गीत की पहली कड़ी कान में पहुँचते ही आकाश की रक्तगंधा मानो मन के दरवाज़े पर पुकारती हुई सामने आ खड़ी हुई।

तुम गगन का मेघ, शान्त सुन्दर
मेरी साध की साधना।

रक्तगंधा की रंगीनी ही नहीं, उसके साथ ज्ञानेन्द्रनाथ से पहली मुलाकात की स्मृति भी रंगीन होकर उग आई।

ओह, कितने दिनों की बात! उस समय वह सब बर्दवान में जज साहब की कोठी में थीं। पिताजी बर्दवान में सेशन्स जज थे। उन्नीस सौ

इकत्तीस ईसवी। अगस्त का महीना। ऐसी ही बारिश होती रही थी दिन भर। साझ के समय बारिश थमे मेघो मे ऐसी ही रक्तसध्या जाग उठी थी। मा और पिताजी घर पर नही थे। वे दोनो अग्रेज पुलिस साहब के यहा चाय के न्योते मे गए थे। आप वह उस समय कलकत्ते मे रहकर पढती थी। उसी दिन मा-बाप के पास यहा आई थी। इसीलिए उसका न्योता नही था। पुलिस साहब को मालूम नही था कि वह आएगी। बगले मे अकेली बैठी थी कि पश्चिम की खिडकी से रक्तसध्या की रगीन छटा की एक झलक रगीन उत्तरीय-सी घर के अन्दर आ पडी। उस झलक ने सारे घर को ही रगीन कर दिया मानो। बगले मे अकेली बैठी उसके मन प्राण मे जैसे एक नशा-सा छा गया था। वह गला खोलकर वही गीत गा उठी थी—

तुम साझ का मेघ शात सुदर
मेरी साध की साधना।
× × ×
रगा दिया है चरण तुम्हारा अपने हृिय के रक्त से
अयि सध्यास्वप्न विहारी।

मन की उमग मे गाती हुई खिडकी के पास आकर खडी होते ही वह काठ की मारी सी रह गई थी। सामने बगले के अहाते की सीढी के नीचे साइकिल थामे खडे थे ज्ञानेन्द्रनाथ। सुन्दर, सुडौल, लम्बे, गोरे, तन्दुरुस्त—ज्ञानेन्द्रनाथ भी उस समय भरे-पूरे युवक थे। वेशभूषा मे जिसे चुस्त-दुरुस्त कहते हैं, उससे भी कुछ ज्यादा। सुरमा को याद है, गले की टाई गाढे लाल रग की थी। अप्रतिभ हो गाना बन्द करके वह खिडकी के सामने से हट गई थी। और अरदली को बुलाकर पूछा था—कौन हैं ? क्या चाहते हैं ?

अरदली ने बताया था, ये यहा के थर्ड मुसिफ साहब हैं। नये आए

है। साहब को सलाम देने आए हैं।

—कब से आए हुए हैं। बताया क्यों नहीं कि साहब नहीं हैं?

—दो मिनट से ज्यादा नहीं हुआ। मैंने कहा, साहब नहीं हैं। वह चले जा रहे थे, लेकिन साइकिल की हवा निकल गई। इसी से देर हो गई।

साइकिल की हवा निकल गई? हंसी आई थी सुरमा को। बेचारे मुंसिफ साहब, इतना सुन्दर सूट पहने अब साइकिल ठेलते हुए चलेंगे! बर्दवान की सड़कों की लाल धूल पानी बरसने से कादो हो गई है। बीच-बीच में खाई-खंदकों में लाल मिक्सचर। सुरखी मिक्सचर? बेहद कौतुक से उसने फिर एक बार झरोखे से उझक कर देखा था।

आज रेडियो में वह गीत सुनकर रक्तसंध्या का रूप अनोखा रूप होकर सुरमा देवी के मन में अंकित हो आया।

[घ]

बंगले के अन्दर दाखिल होते ही ज्ञानेन्द्रनाथ ने दीवाल की ओर देखा। वहां सुरमा की ब्रोमाइड एनलार्ज की हुई तसवीर टंगी हुई थी।

देखने का मौका भी नहीं था। सुरमा जज साहब की लड़की, कालेज में पढ़ती है। प्रगतिशील समाज की। ज्ञानेन्द्रनाथ उस समय मद्रज एव थर्ड मुन्सिफ थे। गाव के हिन्दू मध्यवित्त घर का लड़का। मुसिफी पाने के नाते उनके समाज के लोग उन्हे रत्न कहते, भाग्यवान कहते। लेकिन सुरमा के समाज में आगे निरा नकली पत्थर कहिए, मुसिफी को भी वे सौभाग्य की सात्वना भर ही मानते। सुरमा को ठीक इसी रूप में कुछ दिनों के बाद उन्होंने अपने डेरे में देखा था। डेढ या दो महीने बाद। उनका डेरा शहर के वकील-मुख्तारो वाले मुहल्ले के छोर पर था। फूस की छौनी वाला एक अच्छा-सा बगला ले रखा था। उस समय तक बिजली की बत्ती नहीं हुई थी। गरम देश में रहने के लिए फूस की छौनी वाले से आरामदेह घर दूसरा नहीं होता। सामने एक टुकड़ा बगीचा भी था। उस दिन कचहरी करके साईकिल पर सवार अपने घर से जरा आगे एक मोड पर मुड़ते ही हैरान रह गए थे वह। उनके दरवाजे पर मोटर खड़ी थी। किसकी मोटर ? दूसरे ही क्षण मोटर को पहचानकर उनके अचरज का ठिकाना नहीं रहा। अरे, सेसनस जज की कार ! वही तो, पास ही खड़ा जज साहब का अरदली ड्राइवर से बात कर रहा है। साईकिल से उतर-कर और हड़बड़ाकर उन्होंने अरदली से पूछा, कौन आए हैं ?

अदब के साथ मुसिफ साहब को सलाम करके अरदली ने कहा, मिस साहब आई हैं हुजूर।

मिस साहब ? जज साहब की वह लड़की ? उस दिन बगले पर ज्ञानेन्द्र बाबू ने उसका गीत ही नहीं सुना था, उसके तीखे गले की पुकार भी सुनी थी—अरदली !

इतना ही नहीं, कालेज में पढ़ी, अति आधुनिका, बाप की लाडली बेटी के बारे में इस बीच और भी बहुत-सी बातें सुनी उन्होंने। व्यग्य-कविता लिखती है। वाक्य के तीर में माहिर है। यहां के नीलामी इश्तहार पर

ही चलने वाले साप्ताहिक मे जज साहब की लडकी की कविता छपी थी है। पढी भी है उन्होने। इसी बीच उस लडकी को उन्होने और भी एक बार देखा है। उस रोज तो बगले पर महज उसका मुखडा ही देखा था। सबजज साहब के छोटे लडके के ब्याह के मौके पर प्रीतिभोज मे उसे जज साहब के बगल मे बैठे देखा। छरहरी-सी लडकी उन्हे भली लगी थी, उसकी सयमित गभीरता से उसके प्रति सभ्रम भी हुआ था। वही लडकी उनके घर आई है। शायद हो कि प्रगतिशील राजकुमारी किसी सभा-समिति के चन्दे के लिए आई हो या सुमति को सदस्या बनाने के लिए आई हो। सुमति क्या—?

आज सुमति की याद आते ही ज्ञानेन्द्रनाथ ने सुरमा की तसवीर से नजर हटाकर बाईं तरफ की दीवाल की ओर देखा। दीवाल के बीच मे परदा ढकी एक तसवीर लटकी हुई थी।

सुमति की तसवीर। उनकी पहली घरवाली।

ज्ञानेन्द्र बाबू ने एक लम्बा निश्वास फेंका। अभागिन सुमति! उनके मुह से आक्षेप भरा और कातर ओ-ओ शब्द मानो अपने आप निकल पडा। तेजी से उस कमरे को पार करके वह पोशाकघर मे जा पहुचे।

सुमति की याद बडी दर्दनाक है।

आ करके ज्ञानेन्द्र बाबू ने लम्बी उसास ली। बडी दर्दनाक मौत हुई सुमति की। कमीज उतार रहे थे, उगली की नोक पीठ से लगी। बनियान को भी उतार दिया। पीठ के ऊपर का चमडा ऊबड-खाबड था—वीरान। गरदन झुकाकर छाती की ओर निहारा। छाती पर भी जख्म का निशान था। उस पर हाथ फेरकर देखा। आईने के सामने खडे होकर जख्म के निशान की परिछाई की ओर ताकने लगे। बाए हाथ से

पीठ के जख्म का अनुभव कर रहे थे। सारी पीठ पर फैला था। ओ, अभी भी स्पर्श कातर है। बीस साल गुजर गए, मगर अभी तक ठीक नहीं हुआ। अनजाने अचानक कोई दबाव पड जाने से चौंक उठना। कन् कन् कर उठना। कोट कमीज के नीचे छिपा रहता। सुमति को तो अन्त म पहचानना मुश्किल था। उन्होंने सुना है, लेकिन उसकी कल्पना कर सकते हैं। बेहोश थे कम एक बार जैसे देखा हो शायद। जरा देर के लिए होश हो आया था।

पोशाकघर से लगे बाथरूम के अन्दर गए। चौकी पर बैठकर हाथ-मुह मे पानी डाला। साबुनदानी से साबुन उठाया।

ठीक उसी वक्त सारा बाथरूम एक लाल रोशनी की आभा से लाल हो उठा। जैसे कही जलती आग की लौ दप्प से लहक उठी हो। चौंक उठे। हाथ से साबुन छूट गया। लमहे मे बगल की खिडकी पर नजर दौडाई। लौ की छटा उसी ओर से आई थी। खिडकी के घिसे काच आग की दीप्ति से दमक उठे थे। एक भयकर आतक से उनकी दोनो आख फैल गई—चीख पडे। भय भरी चीख। भाषा नही, केवल आवाज।

दप्प से आग जरूर जल उठी थी, पर जिसे अगलगी कहते हैं, वह नही थी।

खिडकी के बिल्कुल बगल म सभवत आठ दस फुट खुली जगह के बाद ही कोठी के बावर्चीखाने में बावर्ची आमलेट पका रहा था। आम-लेट पकाने वाला बर्तन शायद ज्यादा तप गया था। उस पर घी डालते ही वह जोरो स लहक उठा और किंकर्त्तव्यविमूढ बावर्ची क हाथ से घी का बर्तन गिर पडा। आग कुछ ज्यादा ही थी। उसी की छटा खिडकी के घिसे काच पर प्रतिफलित हुई थी।

वही देखकर ज्ञानेन्द्रनाथ डर से बदहवास हो गए। चीखते हुए खाली

बदन, नंगे पांवों दौड़ते हुए निकल आए। उफ्, कैसी चीख! भयानक एक अ-अ शब्द। सुरमा देवी दौड़ी आईं। उन्हें पकड़ा और उद्वेग के साथ पूछा—क्या हुआ? क्या हुआ! अजी क्या हुआ?

ज्ञानेन्द्र बाबू थर-थर कांप रहे थे। लेकिन वह धीमान व्यक्ति थे। पंडित। उस भयानक भय में होते हुए भी उनकी धी शक्ति लड़खड़ाकर झुकी हुई अवस्था से सम्हलकर खड़ी हो गई, जैसे आंधी में जूझकर पेड़ की फुनगी होती है। पलटकर उन्होंने बंगले की तरफ देखा। आंखों का डरा हुआ भाव जाता रहा, वह प्रश्नातुर हुईं। बोले—आग! लेकिन—

यानी वह खोज रहे थे। मिनट भर पहले उन्होंने जिस आग को जोरों से लहकते देखा, वह आग कहां है?

सुरमा ने अचरज से पूछा, आग! कहां?

अपने तईं ही बोले ज्ञानेन्द्र बाबू, कहां गई? आग की वह लपलपाती लपट, आंखें चौंधिया गई थीं। और, उन्होंने आवाज दी—बॉय!

बॉय ने आकर बताया, लमहे के लिए लहक उठी थी। तुरन्त बुझ गई।

ज्ञानेन्द्र बाबू ने कहा, ऐसे लापरवाह क्यों हो! घर में आग लग जा सकती थी।

बॉय ने झुककर कहा, जी, छप्पर टीन का है!

उस आदमी के अपने कपड़े-लत्ते में लग सकती थी। स्त्री की तरफ मुड़कर बोले—उसे जवाब दे दो! कहा और हनहनाते हुए बंगले के अंदर चले गए। सुरमा देवी ने कोई जवाब नहीं दिया। पति की पूरी पीठ में फैले जख्म के दाग को देखती रहीं। उन्हें बहुत दिन पहले की बात याद आ गई। ज्ञानेन्द्रनाथ और सुमति जलते हुए छप्पर के नीचे दब गए थे। घर में आग लग गई थी। समाचार मिलते ही जज साहब

और सुरमा, भागते हुए वहां पहुंचे। आग रात को लगी थी। मुफस्सिल शहर में पुल की छोनी का घर। बंगलानुमा। जाड़े के दिन थे। दरवाजे-खिड़कियां अंदर से बन्द थीं। आग जो लगी, तो शुरू में हल्के उत्ताप से अच्छा ही लगा होगा। जब उन दोनों की नींद खुली, तो आग चारों तरफ फैल चुकी थी। दरवाजा खोलकर भागते-भागते छप्पर टूटकर उन पर आ गिरा। सुमति और ज्ञानेन्द्र बाबू उस जलते छप्पर के नीचे दब गए। ज्ञानेन्द्र बाबू हाथ पकड़कर खींचते हुए उसे बाहर निकाल रहे थे। बीच में दाव से सुमति का पांव कट गया। ठोकर खाकर वह गिर पड़ी। ज्ञानेन्द्रनाथ छिटककर सामने आ गिरे, फिर भी छाती और पीठ पर जलती धूप आ रही। सुमति का सर्वांग जलकर झुलस गया। ओ, कैसा वीभत्स दृश्य ? ज्ञानेन्द्रनाथ उस समय अस्पताल में बेहोश पड़े थे। सुमति का शरीर कपड़े से ढका था। डाक्टर ने कपड़ा हटाकर दिखाया था।

ओ ! ओः !

सुरमा देवी भी आंख बन्द करके सिहर उठीं।

[ग]

उतना सुन्दर चेहरा घिनौना हो गया था। ओ ! सुमति याद आ रही है। सांवला रंग, पीठ तक झूलते हुए घने बाल, बड़ी-बड़ी आंखें। कुछ मोटापन लिए हुए कोमल-कोमल बदन, मोतों की पान-सी दातों की कतार—इसमें से गाल पर गड्ढा पड़ता था। और दोनों में अनिर्वचनीय प्रेम था। लोगों के बीच इस बात की कितनी चर्चाएं होती थीं। होतीं ही चाहिए थीं। आह, विलायत से लौटे बारिस्टर जज साहब की कालेज में पढ़ी लड़की से एक मामूली मुंसिफ की स्त्री, सदर्द जमींदार की बेटी

कम पढ़ी-लिखी सुमति की ऐसी गहरी अन्तरंगता क्यों ? किसीने कहा था, वही किसी जिला स्कूल में सुरमा और सुमति साथ पढ़ती थी। किसी ने कहा था, दोनो के पिता कभी दार्जिलिंग में अगल-बगल रहे थे। तभी से दोनों सखियां हैं। *आज हठात् सबजज साहब के यहां एक ने दूसरे को* पहचाना और इसीलिए पुराने सखीत्व पर नया रंग चढ़ा रही हैं। लेकिन हर कुछ में कोई न कोई असंगति निकलती ही निकलती है। अन्त तक सही बात सामने आई।

सुमति उसकी अपनी फुफेरी बहन थी, जज साहब अरविंद चटर्जी सुमति के मामा होते थे। सुमति की मां के सहोदर भाई। कालेज में पढ़ते समय ब्राह्म धर्म में दीक्षित होकर सुरमा की मां से विवाह किया था। बाप ने उन्हें त्याज्यपुत्र कर दिया। घर में उनका नाम जबान पर लाने की मनाही थी। दोनों पक्ष में कोई नाता भी नहीं रह गया था। अरविंद बाबू विलायत गए। बारिस्टर होकर लौटे। न्याय-विभाग में नौकरी लेकर एकबारगी दूसरा ही आदमी बन गए। उनके लिए खोज खबर न रखना ही स्वाभाविक था। पिता की तरफ से भी खोज-खबर नहीं ली जाती। नहीं ली गई। बल्कि उस युग के सामाजिक कलंक और लज्जा के अजीब कारण से उन्होंने उस लड़के का नाम ही जतन से धो-पोंछ दिया था। यह परिचय प्रकट हो जाता तो उस जमाने में सामाजिक आदान-प्रदान मुश्किल हो जाता। सुमति ने अपनी मां से मामा का नाम सुना था। इतना ही सुना था कि वह ब्राह्म होकर घर से चले गए हैं। बस। ब्याह के समय उसकी मां ने बारहा उससे कहा था, मामा के बारे में कहीं कोई चर्चा न करना। क्या पता, कौन किस रूप में ले! अवश्य सुरमा ने यह बात अपने पिता से सुनी थी। बहरहाल जज साहब, अरविंद

चटर्जी जरा भावुक हो उठे थे। खास करके रात को बाडी पीकर मा के लिए रोया करते थे। कहा करते, माइ मदर वाज ए गॉडेस। और सुन्दर कितनी थी वह। साक्षात् मातृदेवता। गोया अपने बगाल की जीवित प्रतिमूर्ति। सावला रग, भर पीठ छाए काले बाल, बडी बडी आखें, होठो पर मीठी हसी, कोमल-कोमल वदन—अहा।

सुमति की शक्ल उन्ही जैसी थी। हूबहू, अपनी मा जैसी। उसी अनोखे मेल से उनका परिचय मिला। चटर्जी साहब ने खुद ही पहचाना। सुमति वगैरह को बर्दवान आए दो एक महीने हुए थे। सबजज के यहा रुडके का विवाह। सामाजिक अनुष्ठान। नई वहू के आगमन पर प्रीति-भोज। सुरमा, सुरमा की मा और पिताजी, बाहर लोगो म बैठे थे। मजिस्ट्रेट साहब, पुलिस साहब, डाक्टर साहब आदि भी सपत्नीक पधारे थे। उन सबसे कुछ दूरी रखते हुए डिप्टी, सबडिप्टी, मुसिफ लोग बैठे थे। उनकी स्त्रियो की महफिल अन्दर जमी थी। सो इस बाहर की महफिल के बीच के रास्ते से ही वे सब अन्दर जा रही थी। सुमति भी चली गई थी। सुरमा के पिताजी मजिस्ट्रेट से बात कर रहे थे। अचानक उन्हे काठ-सा मार गया। उनकी आखो मे अपार विस्मय उतर आया। दूसरे ही क्षण अपने को सभालकर उन्होने बात करना शुरू कर दिया था। परन्तु पल की उस विस्मय विमूढता को बहुतो ने देख लिया था। सुरमा की मा की आखो से भी वह नही बच सकी। जो बात वह कर रहे थे, कुछ देर मे उसे खत्म करके फिर गहरी अन्यमनस्कता मे डूब गए। सुरमा की मा अपने को और जब्त नही कर सकी, धीमे से उन्होने पूछा, बात क्या है, यह तो कहो ?

—एँ—? चौंक उठे थे सुरमा के पिता।

स्त्री ने पूछा—एकाएक हो क्या गया तुम्हे ? उस समय इस तरह से चौंक उठे ? और फिर इस तरह से तन्मय होकर सोच रहे हो ?

—कितने दिनों के बाद अचानक मैंने मानो मा को देखा।—यह बात चटर्जी साहब ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए कही थी।—हूबहू मेरी मा। हूबहू। फर्क इतना ही है कि यह स्त्री कुछ माडर्न है।

—कौन क्या कह रहे हो तुम ?

—लाल कोर वाली तसर की साड़ी पहने एक स्त्री उस समय अन्दर गई, देखा तुमने ? सावला रंग, बड़ी-बड़ी आखें, कपाल पर सिन्दूर का टीका जरा बड़ा-सा, कट्टर हिन्दू घर की स्त्रिया जैसा लगाती हैं। हूबहू मेरी मा ! बचपन में मैं जैसा देखता था।

सुरमा क्या कहे, चुप हो रही। चटर्जी साहब भी कुछ मिनटों के लिए चुप हो गए थे। उसके बाद एक-ब-एक जरा सामने की ओर झुककर बोले, जरा पता लगाओगी ? कौन, कौन है यह ? खोजने में कठिनाई नही होगी, लाल कोरवाली तसर की साड़ी पहनकर आई है। बड़ा कोमल चेहरा है, कोपल जैसा सावला रंग, बड़ी बड़ी आख, कपाल पर सिन्दूर का बड़ा सा टीका। आसानी से पहचान लोगी। देखो न जरा। जाओगी ?

सुरमा की मा इस अनुरोध को न टाल सकी। और बड़ी आसानी से उन्होंने सुमति का आविष्कार कर लिया था। लौटकर बोली, यहा नये मुसिफ साहब आए हैं। मिस्टर घोषाल। उन्हीकी स्त्री है।

—थर्ड मुसिफ की स्त्री ?—जरा रुककर बोले, हूबहू मेरी मा ! उसकी माग के ठीक सामने, मेरे कपाल पर बालों का जैसा एक चक्कर है, वैसा ही चक्कर है। मेरी मा के था !

उस दिन घर आकर चटर्जी साहब ने शराब पी और अपनी मा के लिए फुक्का फाड़कर रोए। बेशक मेरी मा है ! इस जन्म में—

सुरमा की मा ने कहा, पुर्नजन्म। बोलो भी मत, लोग-सुनेंगे तो खिल्ली उड़ाएगे।

चटर्जी साहब सहसा बोल पड़े थे—वैसा नहीं होने से इतनी मिलती-जुलती शक्ल कैसे होगी ? ऐसे ही हो सकती है। सुनो, बिटिया मेरी, कल तुम उस लड़की के पास जाओ जरा। तुम मुझे से आ सकती हो। पता लगा आना उसके बाप का नाम क्या है, दादा का नाम क्या है, घर कहा है ?

सुरमा की मा की वैसी राय नहीं थी। लेकिन प्रौढ़ पिता को नन्हे, नादान-सा मन मारते देख उसे पीड़ा हुई थी। बिना गए उससे रहा नहीं गया।

पहले तो सुमति अवाक् हो गई थी, डर गई थी। खुद जज साहब की लड़की आई है, कालेज शिक्षिता एवं आधुनिका ! जो लड़की समाज मे, सभा म उन सबस बहुत दूर और ऊचे बैठती है, वह खुद इस घर मे आई है !

सुरमा ने छिपाया नहीं। बोली, आप क्या तो हूबहू मेरी दादी-सी हैं देखने म। यहा तक कि आपके माग के सामने वालों का यह ढग है न, वह भी मिलता है। मेरे पिताजी मे एक इटरनल चाइल्ड, याने एक चिरतन शिशु है। मा के लिए प्राय रोया करते हैं। कल फूट-फूटकर इतना रोए कि पूछिए मत ! इसीलिए आपसे दादी का नाता जोड़ने आई हू।

सुमति कुछ देर तक सुरमा को अपलक देखती रह गई थी। सुरमा ने हसकर कहा, अवाक हो रही हैं ? अवाक् होने की बात ही है। लेकिन आपके बाप का घर कहा है, यह तो बताइए ? आप क्या देखने मे ठीक अपनी दादी जैसी है ?

सुमति ने कहा नहीं। लेकिन हा, नानी से मेरी शक्ल बहुत मिलती-जुलती है। मा कहती हैं—हूबहू।

इस जवाब से असली नाता ढूढ निकालने म देर नहीं लगी। सुमति देखने म हूबहू अपनी नानी जैसी थी। उसकी नानी उसकी पैदाइश के

बाद भी कई वर्षों तक जिन्दा थी, यहाँ तो इस घटना के बाद लोग मन से मान गए थे कि उन्हीं की सुमति होकर दुबारा जन्म लिया है। और धरम करके इन अलौकिक घटनाओं से [illegible] लोग कहते, जज साहब बाल्य का प्रतिफल पाने के लिए ही लौट आए हैं। ये बातें सुमति न कहती, सुरमा न कहती थी। सुमति चुप रहती थी। वह इतनी चुप थी। ठीक इसी समय घर पे वापस आ पहुँचे थे ज्ञानेन्द्र बाबू। दरवाजे पर जज साहब की गाड़ी कहीं देख क्या करें, वह न लौट पाकर अपने ही घर के बाहर परदेसी से खड़े थे। तमाम दिन मुन्सिफी इजलास में रेट-सूट और मनी-सूट की गाठें सुलझाकर, कलम घीसकर, थके तन और हारे मन-मस्तिष्क से लौटकर मील साइकिल पगोड़ते हुए घर आए तो देखा दरवाजा भरा पड़ा है, सुना भी है तो अन्दर दाखिल होने का अधिकार नहीं। बाहर वाले कमरे में सुमति से बातें करते हुए सुरमा ने ही ज्ञानेन्द्र बाबू की न इधर न उधर वाली दशा देखी और उम्र तथा स्वभाव के धर्म से बेहद कौतुकमयी हो उठी।

[घ]

वाँय !

सुरमा चौंक उठी। पति के बगले में चले जाने के बाद से ही वह हक्की-बक्की-सी खड़ी थी। पति की डरी हुई हालत और उनकी पीठ-छाती के ज़ख्म के निशान देखकर पिछली बातें याद हो आई थीं। सुमति की उस मार्मिक मृत्यु-स्मृति की वेदना में उनकी अपनी जवानी के पूर्वराग के रंगीन दिनों की प्रतिच्छवि निखर आई थी। ठीक कोयले की ढेर पर मरी पड़ी कुछ तितलियों जैसी।

पति का गला सुनकर चौंक उठी। कुरता पायजामा पहने पैरों में रबर
का स्लीपर डाले वह कब आ पहुंचे, पता नहीं था। बगले की तरफ पीठ
किए रत्नमध्या की ओर नजर टिकाए खड़े थे वह।

ज्ञानेन्द्रनाथ कुर्सी खींचकर बैठ गए। उनका चेहरा, उनकी आखें अभी
तक कैसी तो थम थम कर रही थी। उन्हें देखकर सुरमा शकित हो उठी।
लगा, बहुत थके हुए है वह। बढ़कर सुरमा उनकी कुर्सी के पीछे खड़ी हो
गई। गाढे स्नेह से अपने दोनों हाथ उनके कंधे पर रखकर उद्विग्न स्वर
में पूछा, डॉक्टर को खबर भेजू ?

—डॉक्टर को ? ज्ञानेन्द्रबाबू जरा अचकचाए। क्यो ?

—बहुत अपसेट हो गए हो तुम। खुद शायद ठीक समझ नहीं पा
रहे हो अभी तक—

अपना हाथ पीछे ले जाकर स्त्री का हाथ पकड़कर ज्ञानेन्द्रबाबू ने
कहा, नः। मैं ठीक ही हू।

—नहीं। अपनी आज की हालत तुम ठीक-ठीक समझ नहीं पा रहे
हो। आग से तुम्हें खौफ है। जरा-सा में चौंक पड़ते हो, मगर ऐसा तो
नहीं होना। तुम्हें आराम करना चाहिए। और इतना परिश्रम—

टोककर ज्ञानेन्द्रनाथ ने हसते हुए कहा, नहीं-नहीं। मैं ठीक ही हू।
आज की घटना जरा अस्वाभाविक-सी है।

—आग क्या बहुत ज्यादा लहक उठी थी ?

—उफ्, उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकती। बाथरूम की
खिड़की के काच से जो रिफ्लेक्शन हुआ, उससे कमरा बिलकुल लाल हो
उठा। हा, मैं भी कुछ-कुछ, क्या कहू—ड्रीमी—स्वप्नातुर था। वास्तव
में मजन जमीन पर खड़ा नहीं था। जरा ज्यादा चौंक गया।

—मतलब ?

—बताता हू। सामने आ जाओ। पीछे रहने से भी वही बात की

जा सकती है ?

सुरमा सामने की कुर्सी पर आ बैठी। उन दोनों के पीछे चाय की ट्रे और नाश्ता लिए बावर्ची इन्तज़ार कर रहा था—साहब-मेमसाहब एक दूसरे का हाथ पकडे हुए है, इस हालत मे वह आ नही पा रहा था। ज़रा-सा मौका मिला कि झट आकर उसने चाय का सरजाम मेज़ पर रख दिया।

सुरमा ने कहा, तुम जाओ। मै सब ठीक किए लेती हू।

ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा—इस दफे तुम्हारा कसूर माफ कर दिया गया, आइंदे लेकिन माफ नही होगा। होशियार रहना चाहिए। तुम्हारे कपडे मे आग लग गई होती, तो क्या होता ? आः।

सलाम करके बावर्ची चला गया।

ज्ञानेन्द्रनाथ बोले, आदि से अन्त तक आज की घटनाओ ने, क्या कहू, मुझे ज़रा भावुक बना दिया था। यहा आते ही देखा, तुम रक्तसंध्या की ओर टकटकी लगाए खडी हो। वही तुम्हारा पुराना कवि-रवि भाव ! बडे दिनो के बाद आज तुमने कहा, कविता सुनाऊगी ! पुरानी और सूखी मिट्टी मे बारिश का पानी पडने से वह भी कुछ सरस हो उठती है। मेरा मन भी ठीक वही हो उठा था। एक ही साथ बहुत-सी बातें याद हो आईं, याद आ गई बर्दवान की जज-कोठी मे तुम्हे देखने वाली बात। घर मे दाखिल होते ही उधर के दरवाज़े के ऊपर तुम्हारी वह तस्वीर—दैट रिमाइंडेड मी—प्रथम दिन के उस परिचय की याद दिला दी। स्वाभाविक तौर से सुमति की याद आ गई। उस अभागिन के बारे मे ही सोचते-सोचते बाथरूम मे दाखिल हुआ था बनियान खोलते वक्त रोज़ ही पीठ के जले चमडे पर हाथ पडता है। आज भी पडा था। लेकिन आज उस दिन की आग की याद आ रही थी। मन की ऐसी भाव-विह्वल दशा और ऐन वक्त पर धू धू जल उठी आग।

सुरमा ने चाय का प्याला और जलपान का प्लेट बढ़ा दिया। धीमे

से बोली, फिर भी कहूँगी मैं, आज की घटना वैसी तो---। आग से डरना तुम्हारा स्वाभाविक है। पर---

आग का डर उनका स्वाभाविक है। अचानक आग देखकर चौंक पड़ते हैं। फूस के छप्पर वाले घर में सो नहीं सकते। रात को तकिए के नीचे दियासलाई तक नहीं रखते। सिगरेट भी नहीं पीते हैं। घर में पेट्रोल और मिट्टी के तेल का टिन नहीं रखते। कभी कहीं खुली जगह में आतिश-बाजी देखने नहीं जाते। लेकिन आज डर के मारे जाने कैसा तो हो गए थे।

चाय के प्याले में चम्मच को हिलाते हुए शायद आज की सारी घट-नाओं को हल्का बना देने की ही नीयत से सुरमा की तरफ तर्जनी बढ़ाते हुए उन्होंने कहा, वह सब कुछ नहीं। तुम! इन सारी बातों के लिए तुम रिसपांसिबल हो।

---मैं ?

---हाँ, तुम! मैं कवि होता तो कहता।

कैसे मैं किसलिए लिए आई उस दिन का रेणु!

कहा तो, आज की 'तुम' को देखकर उस दिन की 'तुम' की याद आ गई! और सब गड़बड़ कर दिया! कालेज में पढ़ी जज साहब की बेटी ने उस दिन जैसे मुझे चकरा दिया था, आज भी मुझे वैसा ही चकरा गया।

सुरमा देवी हँस पड़ी।

आनन्द ने कहा, ओ, उस दिन जो सम्बोधन किया था तुमने! कम-भीरु!

अबकी सुरमा जोर से हँस पड़ी। कहा, कैसे नहीं करती? अपने घर के दरवाजे पर आकर घर में जज साहब की कालेज में पढ़ी हुई लड़की आई है सुनकर एक मॉडर्न तरुण युवक पेट में जलाने वाली भूख

लिए मुह को चूना किए लौटा जा रहा है। ऐसे मे वहा क्या जाना, तुम्ही कहो ? गर्ई नही का !

सचमुच ही उस दिन मुह को चूना किए वह मुंसिफ ज्ञानेन्द्रनाथ दरवाजे से लौटे जा रहे थे। करते भी क्या ? जज साहब की कानेज म पढी लडकी, वहा कौन-सी चूक बताकर दिमाग खराब कर देगी, कौन जाने। उससे लौट जाना ही बेहतर है। ऐन वक्त पर कमरे का परदा हटाकर स्वय सुरमा ही प्रकट हो गई। ज्ञानेन्द्रनाथ की दुविधा की उस हालत से मन ही मन उसका कौतुक कौध उठा था। उस दिन वह जज साहब की लडकी थी और ज्ञानेन्द्रनाथ मुसिफ नही, अपनेपन की मिठास ने पद-मर्यादा की रुक्षता भरे दुराव को मेट दिया था, बल्कि ऐसी विचित्र स्थिति मे थोडा-सा मोह भर लाया था। इसीलिए सुमति से पहले उसीने परदे को हटाकर मुस्कराते हुए कहा था, आइए मिस्टर घोषाल, बाहर क्यो खड रह गए ! मैं आप ही के इतजार मे बैठी हू। बाते करने आई हू।

सुरमा के पास से मुह बढाकर हसते हुए सुमति ने कहा था, आओ। सुरमा मेरी ममेरी बहन है ! इसके पिता मेरे वही मामा हैं, जो घर स निकल गए थे—

बाकी को सुमति ने रहने ही दिया था।

—अजीब है !

ज्ञानेन्द्रनाथ ने उस दिन खोजकर यही शब्द पाया था। सुरमा ने कहा, ट्रुथ इज़ स्ट्रेंजर दैन फिक्शन !

ज्ञानेन्द्रनाथ लेकिन तब तक भी बैठे नही। शायद बैठने की हिम्मत नही हुई या अवस्था ठीक स्वाभाविक नही लग रही थी। सुरमा ने ही कहा, लेकिन आप बैठिए। खडे क्यो हैं। मैं तो आपकी आत्मीय हू। अपनी-सगी।

बडी अदा के साथ जरा गरदन हिलाकर आखें बडी बडी करके जरा

बाकी हंसी हंसकर सुमति ने कहा, बड़ी मीठी-सी अपनी सगी ! साली !

लमहे में सुरमा में ग्राम्यता की छूत लग गई । सभ्यता को बरकरार रखने हुए ज्ञानेन्द्रनाथ जैसे सुन्दर अप्रतिभ हुए से तरुण पर व्यंग्य कसे बिना उसे तृप्ति नहीं हो रही थी । उस ग्राम्य छूत के अवसर का लाभ उठाकर खिलकर बोल उठी, साली हुई तो क्या, अपने जीजा जी तो बिल्कुल बमभोला है ।

सुमति हंस पड़ी थी ।

दूसरे ही क्षण अपने को सुधार लेने की गर्ज से सुरमा ने कहा, माफ कीजिए । नाराज न होइएगा ।

सुमति ने फिर उसी तरह से गरदन डुलाकर कहा, सालियां तो इससे भी बुरा मजाक करती है । तिस पर यह तो पढ़ी-लिखी आधुनिका साली ठहरी; यह मजाक भोथरा नहीं, चोखा है ।

इतनी देर के बाद ज्ञानेन्द्रनाथ को एक अच्छी-सी बात ढूंढे मिली । बोले, साली का मजाक बुरा भी हो तो बुरा नहीं लगता, पैना होने पर भी बदन में नहीं चुभता । अर्जुन के प्रणाम-बाण और चुम्बन-बाण की बात महाभारत में पढ़ी है न ? बाण—धार किया हुआ चकमक तीर, यह तीर जाकर पैरों में लोट पड़ता, कपाल को मीठा-मीठा छूकर नीचे गिर जाता । सालियों की बात औरों को तीखी और जहरीली लगे चाहे, बहनोइयों के कानों में पुष्प-बाण हो जाती है । तिसपर इनकी जैसी साली ।

चाय बनाते हुए सुमति ने सर उठाकर एक पल के लिए ताक लिया था । सिकुड़ी हुई भवों के नीचे वह नजर बड़ी तेज थी, बड़ी तीखी । बोल उठी, क्या खूब कहना हुआ तुम्हारा । वह भला तुम्हें पुष्प-बाण क्यों मारने लगी ? पुष्प-बाण किसे कहते हैं । भला सुरमा क्या सोचेगी ?

ज्ञानेन्द्रनाथ सकुचा गए थे, घर का परिवेश घुटा हुआ-सा हो उठा था ।

लिए मुह को चूना किए लौटा जा रहा है। ऐसे मे वहा क्या जाता, तुम्ही कहो ? गवई वही का !

सचमुच ही उस दिन मुह को चूना किए यहं मुसिफ ज्ञानेन्द्रनाथ दर वाजे से लौटे जा रहे थे। करते भी क्या ? जज साहब की कालेज में पढ़ी लडकी, कहा कौन-सी चूक बताकर दिमाग खराब कर देगी, कौन जाने उससे लौट जाना ही बेहतर है। ऐन वक्त पर कमरे का परदा हटाकर स्वय सुरमा ही प्रकट हो गई। ज्ञानेन्द्रनाथ की दुविधा की उस हाल्त से मन ही मन उसका कौतुक कौंध उठा था। उस दिन वह जज साहब की लड़की थी और ज्ञानेन्द्रनाथ मुसिफ नही, अपनेपन की मिठास ने पद मर्यादा की रूक्षता भरे दुराव को मेट दिया था, बल्कि ऐसी विचित्र स्थिति मे थोडा-सा मोह भर लाया था। इसीलिए सुमति से पहले उसीने परदे को हटाकर मुस्कराते हुए कहा था, आइए मिस्टर घोषाल, बाहर क्यो खडे रह गए ! मैं आप ही के इतजार म बैठी हू। बाते करने आई हू।

सुरमा के पास से मुह बढाकर हसते हुए सुमति ने कहा था, आओ। सुरमा मेरी ममेरी बहन है ! इसके पिता मेरे वही मामा है, जो घर से निकल गए थे—

बाकी को सुमति ने रहने ही दिया था।

—अजीब है !

ज्ञानेन्द्रनाथ ने उस दिन खोजकर यही शब्द पाया था। सुरमा ने कहा, ट्रुथ इज स्ट्रेंजर दैन फिक्शन !

ज्ञानेन्द्रनाथ लेकिन तब तक भी बैठे नही। शायद बैठने की हिम्मत नही हुई या अवस्था ठीक स्वाभाविक नही लग रही थी। सुरमा ने ही कहा, लेकिन आप बैठिए। खडे क्यो हैं। मैं तो आपकी आत्मीय हू। अपनी-सगी।

बडी अदा के साथ जरा गरदन हिलाकर आखें बडी-बडी करके जरा

बाकी हँसी हँसकर सुमति ने कहा, बड़ी मीठी-सी अपनी सगी । साली ।

लहजे में सुरमा के ग्राम्यता की छूत लग गई । सभ्यता को बरकरार रखते हुए ज्ञानेन्द्रनाथ जैसे सुन्दर अप्रतिभ हुए से तरुण पर व्यंग्य कसे बिना उसे तृप्ति नहीं हो रही थी । उस ग्राम्य छूत के अवसर का लाभ उठाकर खिलकर बोल उठी, साली हुई तो क्या, अपने जीजा जी तो बिल्कुल बमभोला हैं ।

सुमति हँस पड़ी थी ।

दूसरे ही क्षण अपने को सुधार लेने की गर्ज से सुरमा ने कहा माफ कीजिए । नाराज न होइएगा ।

सुमति ने फिर उसी तरह से गरदन हिलाकर कहा, सालियाँ तो इससे भी बुरा मजाक करती हैं । तिस पर यह तो पढ़ी-लिखी आधुनिका साली ठहरी; यह मजाक भोथरा नहीं, चोखा है ।

इतनी देर के बाद ज्ञानेन्द्रनाथ को एक अच्छी-सी बात ढूंढे मिली । बोले, साली का मजाक बुरा भी हो तो बुरा नहीं लगता, पैना होने पर भी बदन में नहीं चुभता । अर्जुन के प्रणाम-बाण और चुंबन-बाण की बात महाभारत में पढ़ी है न ? बाण—धार किया हुआ झकमक तीर, वह तीर जाकर पैरों में लोट पड़ता, कपाल को मीठा-मीठा छूकर नीचे गिर जाता । सालियों की बात औरों को तीखी और जहरीली लगे चाहे, बहनोइयों के कानों में पुष्प-बाण हो जाती है । तिसपर इनकी जैसी साली ।

चाय बनाते हुए सुमति ने सर उठाकर एक पल के लिए ताक लिया था । सिकुड़ी हुई भवों के नीचे वह नजर बड़ी तेज थी, बड़ी तीखी । बोल उठी, क्या खूब कहना हुआ तुम्हारा ! वह भला तुम्हें पुष्प-बाण क्यों मारने लगी ? पुष्प-बाण किसे कहते हैं । भला सुरमा क्या सोचेगी ?

ज्ञानेन्द्रनाथ सकुचा गए थे, घर का परिवेश घुटा हुआ सा हो उठा था ।

[च]

दोनों को ही यह बात याद आ गई। बीती बात की सरस याद से जो आनन्द-मुखरता सांझ के आसमान में तारे निकलने जैसी निखर निखर उठी थी, उस पर जैसे एक मेघ आ बैठा। दोनों लगभग एक ही साथ चुप हो गए। जरा देर में सुरमा देवी ने पूछा, और थोड़ी सी चाय नहीं लोगे ?

--नहीं।

थिर आंखों ज्ञानेन्द्रनाथ दिगन्त की ओर देख रहे थे। आंखों की निगाह अस्वाभाविक रूप से चमक उठी थी। बिना कुछ बोले ही कुर्सी पर से उठ पड़े वह। हाथ दोनों पीछे की तरफ मोड़कर पायचारी करने लगे। अहाते के उस तरफ एक चरवाहा एक गाय को खेद रहा था। ओ। सुमति ने उन्हें उससे भी बुरी तरह खेदा। उफ्। गाय-भैंस के दलाल छुरी या सुई गड़ी नोक वाली लाठी से जिस तरह मवेशी को भगाते हुए ले जाते है, वैसे ही भगाए लिए फिरी है ! कैसी बेदर्द पीड़ा ! जिस पीड़ा से उन्होंने जीवन के सारे ही विश्वास खो दिए थे—ईश्वर पर विश्वास, धर्म पर विश्वास, सब विश्वास। सुमति के सामने उन्होंने ईश्वर के नाम पर, धर्म के नाम पर शपथ की। सुमति ने नहीं माना। दिन-भर में दो-तीन बार कहती, कहो, भगवान की सौगंध खाकर कहो। कहो, धर्म की कसम खाकर कहो।

उन्होंने कहा। वैसी कसम खाकर कहने पर बोली, मेरे मरने से तुम्हारा क्या आना-जाना है ? यह तो अच्छा ही होगा।

उसी पहले दिन से ही सुमति ने शुबहा किया था। उसने बार-बार कहा, बस, बस उसी एक बात से ही मैं समझ गई। उसकी दोनों आखें दूर दूर पर उसी शहर के परदे की आड में उसने पहले दिन जो बातें

कही थी, उनमें से प्रत्येक में सन्देह की बू थी। लेकिन उस दिन ज्ञानेन्द्र-नाथ या सुरमा, दोनों में से किसी ने भी नहीं भाप पाया था।

अरविन्द चटर्जी जैसे उदार आदमी को भी वह कड़वी बात कहा करती। अपनी मा से उसकी शक्ल बहुत मिलती थी, इसलिए उसपर चटर्जी साहब के स्नेह की सीमा नहीं थी। सुमति को दे-दिला कर उनकी कांक्षा नहीं मिटती थी। और सुमति के पति के नाते ज्ञानेन्द्रनाथ पर भी उन्हें गहरा स्नेह था। ज्ञानेन्द्रनाथ के बुद्धि से दमकते अन्तर के स्पर्श से वह स्नेह गाढ़ा से और गाढ़ा हो उठा था। और गाढ़ा हो उठा था ज्ञानेन्द्रनाथ के प्रसन्न मन और सदा हँसते-से मुखड़े से। उन्होंने उन्हें अपने बहुत करीब खींच लिया था। सुमति उनके पास नहीं फटकना चाहती, अरविन्द बाबू ज्ञानेन्द्रनाथ को समीप खींचकर उन्हींके मारफत अजस्र स्नेहोपहार भेजना चाहते। उनकी उन्नति का रास्ता उन्होंने ही बना दिया था। फैसला लिखने का तरीका, न्याय के सिद्धान्त पर पहुँचने का कौशल उन्हें उन्होंने सिखाया था। लेकिन सुमति को यह सब जरा भी बरदाश्त नहीं होता। वह जब उनकी दी हुई कोई चीज ले आते, तो सुमति लौटा जरूर नहीं देती थी, पर उसे अपने हाथों लेती नहीं थी। कहती, वहां रख दो। इस देने को क्या कहूं! और क्या कहूं नानी से अपनी शक्ल के इस मेल को! क्या कहूं इस बुढ़ापे में जज साहब की उमगी हुई भक्ति को! गाय मारकर जूता दान! वही दान मुझे लेना पड़ता है।

फैसला लिखने या न्याय-पद्धति सिखाने पर कहती, इस न्याय सिखाने के मुंह पर झाड़ू मारू। एक स्त्री के लिए जो धर्म छोड़ सकता है, वह तो अधार्मिक है। और जो अधार्मिक है, वह फैसला क्या करेगा? धर्म के बिना न्याय होता है भला! और वैसे ही आदमी से न्याय सीखना!

खैर! सुमति की बात रहने दीजिए। उसकी तसवीर दीवार पर

[च]

दोनों को ही यह बात याद आ गई। बीती बात जो आनन्द-मुखरता मन में आसमान में तारे निकलने उठी थी, उस पर जैसे एक मेघ आ बैठा। दोनों एक चुप हो गए। ज़रा देर में सुरमा देवी ने पूछा, और थो लोगे ?

—नहीं।

फिर आखो ज्ञानेन्द्रनाथ दिगत की ओर देख रहे थे निगाह अस्वाभाविक रूप से चमक उठी थी। बिना कुछ पर से उठ पड़े वह। हाथ दोनों पीछे की तरफ मोड़कर प. लगे। अहाते के उस तरफ एक चरवाहा एक गाय को ले. ओ। सुमति ने उन्हें उससे भी बुरी तरह खेदा। उफ़! दलाल छुरी या सुई गडी नोक वाली लाठी से जिस तरह मवेशी हुए ले जाते है, वैसे ही भगाए लिए फिरी है! कैसी बेदर्द पी पीड़ा से उन्होंने जीवन के सारे ही विश्वास खो दिए थे— विश्वास, धर्म पर विश्वास, सब विश्वास। सुमति के सामने उन्हें के नाम पर, धर्म के नाम पर शपथ की। सुमति ने नहीं माना। म दो-तीन बार कहती, कहो, भगवान की सौगंध खाकर कहो। धर्म की कसम खाकर कहो।

उन्होंने कहा। वैसी कसम खाकर कहने पर बोली, मेरे मन तुम्हारा क्या आता-जाता है ? वह तो अच्छा ही होगा।

उसी पहले दिन से ही सुमति ने शुबहा किया था। उसने बार कहा, बस, बस उसी एक बात से ही मैं समझ गई। उसकी दोनों दप् दप् कर उठी। रहस्य के परदे की आड़ में [illegible] ते दिन जो

शीलन ? हां, अनुशीलन । फैसला लिखते वक्त मैं ऐसा फैसला लिखने की कोशिश करता हूं, लिखता हूं, जिसे धर्म का विचार कहा जा सकता है। डिवाइन जस्टिस । यह डिवाइन जस्टिस उन्ही का कहा है।

हुजूर !

अचकचाकर ज्ञानेन्द्रनाथ ने पलटकर देखा । बैरा ने आवाज दी।

—कल रात इधर एक साप निकला था हुजूर । जग रखकर फिर बोला, शायद उन्हे याद दिलाई—अधेरा हो गया।

सर उठाकर ज्ञानेन्द्रनाथ ने एक बार चारो तरफ नजर दौडा ली। साझ हो गई है। यही नही, आसमान मे फिर से बदली घिर आई है। दूर क्षितिज के पास बस्ती की वनरेखा का चिह्न तक अंधेरे मे डूब गया है। वह अधेरा प्रातर को छापता हुआ धीरे-धीरे गाढा होकर उनकी तरफ बढ़ता आ रहा है। बगले की तरफ देखा । वहा बत्तिया जल उठी थी। सुरमा भी बगीचे मे नही थी। वह न जाने कब उठकर बगले के अदर चली गई थी। चुपचाप ।

टगी है, पर उसपर परदा पड़ा रहता है। रहने दीजिए सुमति की बात। अरविन्द बाबू कहा करते, सुमति के बारे में कहते, क्या करोगे ? बरदाश्त करो। प्यार करो उसे। लव इज गॉड ऐंड गॉड इज लव।

चटर्जी साहब कहते थे, ईश्वर के अस्तित्व पर मुझे यकीन नहीं। ब्रह्म-ब्रह्म—यह सब भी नहीं। मैंने एक लड़की को प्यार किया था। वह चूंकि ब्राह्म थी, इसीलिए मैं ब्राह्म बना। लेकिन ईश्वर की कल्पना पर मुझे विश्वास है, मैं वहां तक पहुंचने की कोशिश करता हूं। ज्ञानेन्द्र, सब कुछ आदमी करता है। आदमी ! वही ईश्वरत्व है। एक पवित्र, एक महिमामय मनुष्य की मानसिक सत्ता में उसका प्रकाश होता है।

सुमति की तंगदिली, प्यार के लिए अपना धर्म पलटने के व्यक्तिगत प्रसंग से वह कब जाने सार्वजनीन जीवन-दर्शन के दायरे में आ जाते। चेहरे पर की सारी उदासी धुल जाती उनकी, इस रक्तसंध्या जैसी एक चमकती हुई प्रसन्न प्रभा से उनका मुखमंडल उद्भासित हो उठता। दूर दिगन्त पर नजर टिकाए मानस-लोक की गहराई से बोलते, अब मेरी यही उपलब्धि है कि मानव-चैतन्य के द्वारा ईश्वरत्व ही अपने को प्रकट करता है। गॉड नहीं, गॉडलीनेस, येस गॉडलीनेस, यस्—कहते-कहते चेहरा मुसकराहट की रेखाओं से खिल पड़ता।

देश में उस समय गांधी युग का आरम्भ हुआ था। सन् उन्नीस सौ बीस से कुछ पहले। उन्होंने कहा था, गांधी में उसका आभास पा रहा हूं। बुद्ध में वह प्रकट है। रवीन्द्रनाथ की कविता में उसकी छटा है। वहां मैं बुद्धि के द्वारा पहुंच पाता हूं, प्राण से, श्रद्धा से नहीं पहुंच पाता। नहीं पहुंच पाता। शराब पिए बिना जो मैं रह नहीं सकता। और भी बहुत-सी कमजोरियां मुझमें हैं। मगर दूसरों के प्रति अन्याय मैं नहीं करता। नहीं करूंगा। यही मेरा पहला पाठ है। न्याय-विभाग में मैंने उसके अभ्यास का सौभाग्य पाया है। हिन्दी में उसे क्या कहूं ? अनु-

है। राष्ट्र में इस वाद को प्रयोग करने जैसी युक्तिहीन बात नहीं हो सकती। यहाँ तक कि सम्प्रदायगत रूप में भी यह वाद सफल नहीं हुआ है, सफल हो नहीं सकता। इस लेख ने कुछ दिनों के लिए चारों ओर, खास करके शिक्षित समाज में एक खासी हलचल पैदा की थी। उस लेख को सुरमा ने भी पढ़ा था। लेखक की युक्ति उसे बुरी नहीं लगी। उस समय सरकारी नौकरी पेशा लोग, खास करके जो ऊँचे ओहदों पर थे और चाकरी विहीन ऐसे लोग जो बहुत अधिक यूरोपीय सभ्यताप्रेमी थे, मन-प्राण से विश्वास करते थे कि गांधी जी की यह अहिंसा बिल्कुल असम्भव है, इसलिए यह निश्चित रूप से नाकामयाब होगी। यही नहीं, अति आधुनिक मतवाद और सभ्यता विरोधी इस गांधीवादी आंदोलन को बहुत कुछ अपने खिलाफ समझते थे। समाज में, सभा में, बैठकों में इस पर भारी आलोचनाएं होतीं। उन सबका यह ख्याल था कि अहिंसा का यह मतवाद निरा बाहरी मुखौटा है। यह सिंह की खाल ओढ़े गदहा नहीं, गदहे की खाल ओढ़े सिंह है। सुरमा के पिता अरविंद बाबू और मत के व्यक्ति थे। गांधी जी के प्रति उन्हें असाधारण श्रद्धा थी। लेकिन तो भी जज साहब के नाते वह और उनकी स्त्री-कन्या मजबूरन विरोधी शिविर के गिने जाते, लोगों द्वारा भी और अपने अजानते आप भी अपने को वही गिनते थे। इसीलिए उस लेख की विषय-वस्तु जंची थी। लिखने का ढंग भी बड़ा पैना, बड़ा टेढ़ा था। कई दिनों के बाद उसके पिता ने लिखा, यह लेख ज्ञानेन्द्र ने लिखा है। मुझे उसने दिखाया था। अच्छा लिखा है। पढ़कर देखना।

सुरमा के आश्चर्य की सीमा न रही। यह लेख सुमति के उस मुंह-चोर बालक की कलम का कमाल है! ठीक जैसे अच्छा नहीं लगा!

व्यग्य कसकर उसे एक अनास्वादित आनद का अनुभव होता। पहली कविता उसे अभी भी याद है। सुमति की ही चिट्ठी मे लिखा था—जीजा जी से कहना—

सुमति तुम्हारी पत्नी, साली यह दुर्मति
मैं टोबाको-पाईप और चिलम-सी सुमति
है पवित्र हुक्के की, उसमें नही निकोटिन।
सुमति तसर की धोती, मैं लेकिन टाई-पिन।
चुभना पिन का धरम, निकोटिन का खामी यमभोले!
धन्यवाद, मह लिया होठ पर हसकर होले होले।

जवाब मे सुमति के ही पत्र मे दो पक्तिया आई—

धन्यवाद से गरज नही, धन्यवाद से साध,
मतलब, वरना माफ अगर बन जाए अपराध।

पद्य की ये दो पक्तिया पढकर सुरमा ने भवें टेढी कर ली थी, उसके होंठो पर अजीब हसी फैल गई थी। मन ही मन बोली थी—हू! ये हजरत ढपोरशख तो खूब हैं! धार है। मिसरी की डली नही, मिसरी की छुरी!

इसके बाद ही अचानक अघटन घट गया था। एक के बाद दूसरा। एक मशहूर अग्रेजी अखबार मे एक लेख छपा था—एक अहिंसक सिंह और उसके बच्चे। लेख गाधी जी पर आक्रमण था। लेखक ने कहा था, कोई सिंह शायद हो कि अभ्यास और साधना से अहिंसक हो जाए, तो क्या यह मान लें कि उसके बच्चे भी अपना जन्मजात धर्म हिंसा के बिना ही पैदा होंगे या लहू से उन्हे अरुचि होगी? लेख की भाषा जैसी जोरदार थी, वैसी ही पैनी थी उसकी दलीलें। लेखक ने युद्ध के समय से लेकर आज तक के इतिहास मे उदाहरण देकर यही कहा था, अहिंसा की साधना और-और धर्म की तरह व्यक्तिगत जीवन मे ही सफल हो सकती

है। राष्ट्र में इस वाद को प्रयोग करने जैसी युक्तिहीन बात नहीं हो सकती। यहां तक कि सम्प्रदायगत रूप में भी यह वाद सफल नहीं हुआ है, सफल हो नहीं सकता। इस लेख ने कुछ दिनों के लिए चारों ओर, खास करके शिक्षित समाज में एक खासी हलचल पैदा की थी। उस लेख को सुरमा ने भी पढ़ा था। लेखक की युक्ति उसे बुरी नहीं लगी। उस समय सरकारी नौकरी पेशा लोग, खास करके जो ऊंचे ओहदों पर थे और चाकरी विहीन ऐसे लोग जो बहुत अधिक यूरोपीय सभ्यताप्रेमी थे, मत-प्राण से विश्वास करते थे कि गांधी जी की यह अहिंसा बिल्कुल अवास्तव है, इसलिए यह निश्चित रूप से नाकामयाब होगी। यही नहीं, अति आधुनिक मतवाद और सभ्यता विरोधी इस गांधीवादी आंदोलन को बहुत कुछ अपने खिलाफ समझते थे। समाज में, सभा में, बैठकों में इस पर काफी आलोचनाएं होतीं। उन सबका यह ख्याल था कि अहिंसा या यह मतवाद निरा बाहरी मुखौटा है। यह सिंह की खाल ओढ़े गदहा नहीं, गदहे की खाल ओढ़े सिंह है। सुरमा के पिता अरविंद बाबू और मत के व्यक्ति थे। गांधी जी के प्रति उन्हें असाधारण श्रद्धा थी। लेकिन तो भी जज साहब के नाते वह और उनकी स्त्री-कन्या मजबूरन विरोधी शिविर के गिने जाते, लोगों द्वारा भी और अपने अजानते आप भी अपने को वहीं गिनते थे। इसीलिए उस लेख की विषय-वस्तु जंची थी। लिखने का ढंग भी बड़ा पैना, बड़ा टेढ़ा था। कई दिनों के बाद उसने पिता ने लिखा, यह लेख ज्ञानेन्द्र ने लिखा है। मुझे उसने दिखाया था। अच्छा लिखा है। पढ़कर देखना।

सुरमा के आश्चर्य की सीमा न रही। यह लेख सुमति के उस मुंह-चोर कार्तिक की कलम का कमाल है। ठीक जैसे अच्छा नहीं लगा। लगा, मानो वह ठगी गई, ज्ञानेन्द्र ने ही भलामानस बनकर उसे ठग लिया।

इसके कुछ ही दिन बाद दूसरा आश्चर्य। उस दिन एकाएक हाथ में एक

टेनिस राकेट लिए सुमति के पति होस्टल में मुलाकात करने आए। टेनिस राकेट! सुरमा को हंसी आई थी। ऊंचे ओहदे की सजा। गवई गाव के आदमी, बहुत-बहुत रात जगते हुए पढ-पढाकर इम्तहान मे अच्छा करके एक अच्छी सी नौकरी पाई, उसीके चलते आफिसियलो के क्लब मे नकद चन्दा तो गिनना ही पडता है, ऊपर से गाठ की इतनी रकम खर्च करके टेनिस-राकेट खरीदकर शायद हो कि फिसल विसलकर बेचारे को अपनी टाग तोड लेनी पडे! हसकर बोली खेलना जानते है कि श्रीगणेश है?

ज्ञानेन्द्र बाबू ने कहा, सिखा दगी?

—सिखाने म ही सब आदमी को सब कुछ आता है? अपना भरोसा है?

—सो है। बचपन म गुल्ली डडा खूब अच्छा खेलता था।

खिलखिलाकर हस पडी थी सुरमा! उसके बाद बोली, सिखा नही सकती, ऐसी बात नही। लेकिन गुरु-दक्षिणा क्या दगे?

—बताइए कि क्या देनी होगी? सोच देखू।

—यह जो कामिनी ढग की मूछ है आपकी, उसे मुडवा देना होगा।

हसकर ज्ञानेन्द्रनाथ बोले, आपने बडी मुसीबत म डाल दिया। क्योकि यह मूछ सुमति को बडी प्यारी है। उसर एक बिल्ली थी पाली हुई। वह मर गई। उसका शोक सुमति इस मूछ को ही देखकर भूली है।

सरसरी निगाह दौड़ाकर हमने हुए कहा, अरे बाप रे ! यह बेचारा केशव डेरे पर मर गया। उफ़, कैसा बड़ा मन्तव्य है !

सुरमा ने दूसरे ही पल ज्ञानेन्द्रनाथ पर हमला किया। क्यों, सो पता नहीं। क्योंकि उन मन्तव्यों में से एक भी उसका लिखा नहीं था और जज साहब की बेटी इस मत के खिलाफ दूसरा मत भी नहीं रखती थी। लिहाजा वह आज भी नहीं सोच सकती है कि उस दिन वह उनपर इस बुरी तरह से क्यों टूट पड़ी थी। कहा था, जी, वह सज्जन अपने डेरे पर नहीं मरे हैं, वह मेरे सामने बैठे हैं, मैं जानती हूं। नकली नाम की आड़ में बैठे हैं। यहीं से हमला करना शुरू किया था। उसके बाद लगातार तीरों की वर्षा। ज्ञानेन्द्रनाथ सिर्फ मुस्कराए थे। वे तीर मानो किसी अलक्षित कवच से टकराकर भोथरे हो हो बेचारे सरपत के तीर-से धूल में गिर गिर पड़े थे। सुरमा थक गई। बोली, मीठे मुंह की गालियां बड़ी अच्छी लगीं।

वह दर्प से जल उठी थी। कहा था, दूसरी मीठे मुंहवालियों को बुलाऊं ? बुलाकर कहूं उनसे कि देखो, उस बदनाम लेख के लेखक यही जनाब हैं ? देखेंगे ?

ज्ञानेन्द्रनाथ की भी दोनों आंखें एक बार दर्प से जल उठी थीं। सुरमा की नजरों से वह बची नहीं। वह हैरान रह गई थी। गोबर-गणेश होने हुए भी हजरत के हाथों कलम देखने से अचरज नहीं होता, शौकिया बाबू कार्तिक के हाथों तीर-धनुष भी अशोभन नहीं लगता, लेकिन कपाल की आग उनकी आंखों में जल कैसे उठी ? परन्तु दूसरे ही पल ज्ञानेन्द्रनाथ वही निरीह गोपाल ज्ञानेन्द्रनाथ बन गए थे।

वह बोले, देखने को तैयार हूं। मगर आज नहीं, कल सुमति को तार देकर बुलवा लूं। मेरी तरफ से वकील होकर वही लड़ेगी। क्योंकि औरतों के गाली-गलौज का जवाब और युक्तिहीन दलीलों के खिलाफ

टेनिस-राकेट लिए सुमति के पति होस्टल में मुलाकात करने आए ! टेनिस-राकेट ! सुरमा को हंसी आई थी। ऊंचे ओहदे की सजा। गवई गाव के आदमी, बहुत-बहुत रात जगते हुए पढ-पढाकर इम्तहान में अच्छा करके एक अच्छी-सी नौकरी पाई, उसीके चलते आफिसियलों के क्लब में नकद चन्दा तो गिनना ही पडता है, ऊपर से गाठ की इतनी रकम खर्च करके टेनिस-राकेट खरीदकर शायद हो कि फिसल विसलकर बेचारे को अपनी टाग तोड लेनी पडे ! हसकर बोली, खेलना जानते है कि श्रीगणेश है ?

ज्ञानेन्द्र बाबू ने कहा, सिखा दगी ?

—सिखाने से ही सब आदमी को सब कुछ आता है ? अपना भरोसा है ?

—सो है। बचपन मे गुल्ली-डडा खूब अच्छा खेलता था।

खिलखिलाकर हस पडी थी सुरमा ! उसके बाद बोली, सिखा नहीं सकती, ऐसी बात नहीं। लेकिन गुरु-दक्षिणा क्या दगे ?

—बताइए कि क्या देनी होगी ? सोच देखू।

—यह जो कार्तिकी ढग की मूछ है आपकी, उसे मुडवा देना होगा।

हसकर ज्ञानेन्द्रनाथ बोले, आपने बडी मुसीबत मे डाल दिया। क्योंकि यह मूछ सुमति को बडी प्यारी है। उसके एक बिल्ली थी पाली हुई। वह मर गई। उसका शोक सुमति इस मूछ को ही देखकर भूली है।

सुरमा ने बाकी हसी हसकर कहा, फिर तो उसे मुडवाना ही पडेगा, मैं बल्कि सुमति को एक अच्छी-सी काबुली बिल्ली दूगी।

इसके बाद बातों का मोड सहसा घूम गया था। पास ही टेबिल के ऊपर पुराने अखबारों में लाल-नीले पेंसिल के निशानवाला वह अखबार पडा था। ज्ञानेन्द्रनाथ की नजर उसी पर पडी। उन्होंने कौतूहल से उस अखबार को खीच लिया और जहा-तहा तरह-तरह के मन्तव्यों पर एक

—क्यों ? मैंने क्या किया ?

—रहते कैसे तिरीट से हैं, गोया भुनी हुई मछली भी पल्ट कर नहीं खा सकते। मगर—

ज्ञानेन्द्रनाथ ने हंसकर कहा, तो मेरी मूछें बरकरार रह गईं ?

खेल ही खेल में क्या से क्या हो गया। सुरमा ज्ञानेन्द्रनाथ की ओर आकृष्ट हो गई। सुमति उसपर कुढ़ गई। सुरमा ने उसकी परवाह नहीं की। बल्कि उसपर क्रुद्ध हो गई। वहां की टेनिस प्रतियोगिता के समय इसका चरम हो गया। बड़े दिन की छुट्टियों में आकर सुरमा प्रतियोगिता में शामिल हुई। पार्टनर लिया ज्ञानेन्द्रनाथ को। फाइनल में जीतकर दोनों तसवीर खिंचाने गए थे। तसवीर खिंचाने के पहले ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा, तुम्हारे साथ तसवीर खिंचाऊंगा, मूछें नहीं मुड़वा लूं !

इस खेल में ही 'आप' से वे दोनों 'तुम' पर उतर आए थे। सुरमा हंस उठी थी। और, उस दिन ज्ञानेन्द्रनाथ जब उनकी कोठी से विदा होने लगे, तो अपना थोड़ा सा बाल काटकर एक लिफाफे में भरकर सुरमा के हाथ में देते हुए बोले, यह रही दक्षिणा ! लेकिन, बस। अब मैं भी तुमसे भेंट नहीं करूंगा, तुम भी नहीं करना। सुमति बर्दाश्त नहीं कर पा रही है। आज उसने मुझसे साफ कह दिया, तुमने मेरा सत्यानाश कर दिया !

बहुत दिनों के बाद आज सुरमा टेनिस-फाइनल के बाद ली हुई उस तसवीर के सामने खड़ी हुई। तसवीर में एक दूसरे की ओर ताकते हुए खड़े हैं दोनों। फोकस के समय दोनों कैमरे की तरफ ताक रहे थे, लेकिन ऐन तसवीर लेते समय अनजान में ही वे एक-दूसरे को देखते हुए हंस पड़े थे। ज्ञानेन्द्र बाबू अब उसकी नहीं है। उसे सुमति ने—। इस घटना की याद दिमाग में आग लगा देती है।

ईर्ष्यालु सुमति ! अजीब कठोर और क्रूर ईर्ष्या। परन्तु, भूल-प्रेम

वैसा जवाब देना मेरे लिए तो मुमकिन नहीं है।

कुछ लड़कियां आ पहुंची, इसलिए आलोचना बन्द हो गई।

फिर दूसरी घटना। यह भी टेनिस-रावेट से ही घटी।

[घ]

उस बार दशहरा कार्तिक महीने में पड़ा था। पूजा की छुट्टियों में उस बार पिताजी पंद्रह एक दिन दार्जिलिंग में बिताकर ही लौट आए थे। उनका कर्मस्थल संताल परगने के आसपास का वह शहर शरत्-काल से कई महीने बड़ा मनोरम हो उठता है। लौटते ही सुरमा को पता चला था, सुमति वगैरह पूजा की छुट्टियों में इस बार घर नहीं गई हैं, यहीं हैं। सुमति की ही तबीयत खराब हो गई थी। सुमति को पथ्य पड़ चुका था, मगर वह कमज़ोर थी। चटर्जी साहब पूजा की भेंट, कपड़ा-लत्ता, मिठाई-विठाई लेकर खुद ही उनके घर गए थे। सुरमा भी साथ गई थी। लौटते वक्त सुरमा ने ज्ञानेन्द्रनाथ से कहा, आज तीसरे पहर आइएगा। टेनिस का शुभारंभ करा दूंगी।

चटर्जी साहब खुद अच्छा खेलते थे। कभी अपनी स्त्री को भी सिखाया था उन्होंने। सुरमा ने बचपन से ही खेलकर नाम कमाया था। उस रोज चटर्जी साहब खेलने नहीं आए थे। सुरमा अकेली ही खेलने को उतरी। उसी ने सर्व किया और उधर की पलटा-मार देखकर चौंक गई। उस बॉल को वह फिर से नहीं मार सकी। ज्ञानेन्द्रनाथ की मार पक्के खिलाड़ी की मार थी। सुरमा हार गई थी।

खेल खत्म होने पर कहा था, आप बड़े धूर्त आदमी हैं। उससे भी ज्यादा कपटी हैं। डेंजरस मैन!

—इन सब पर विश्वास नहीं करती सुरमा । परन्तु यह विश्वास उसे हो गया है कि मनुष्य के स्वभाव का जहर हो चाहे अमृत, जो उसका स्वभाव-धर्म है, वह मरने से भी उसकी देह से नहीं मरती, नहीं जाती । वह रहती है और अपनी क्रिया करती जाती है । सुमति की ईर्ष्या आज भी मन्त्रिय है, जीवन के आनन्द के क्षण में अचानक वह व्याधि की तरह हमला करती है, इस जन्म में शायद उस हमले से छुटकारा नहीं । लेकिन आज वह हमला बड़ा जोरदार हुआ—अचानक जल उठी उस आग जैसा ही जल उठा है । फूस की आग तो बुझ गई, लेकिन यह आग नहीं बुझी ।

[ग]

उनके कंधे पर एक भारी हाथ रखा गया । उसमें गाढ़े स्नेह का आभास था, पर हाथ बड़ा ठंडा था । रबर की चप्पल पहने पति दरी पर कदम रखते हुए आए थे, उससे जो धीमी-सी आवाज हुई, वह सुरमा के कानों तक नहीं पहुंची ।

—नाहक ही अपने को दुःखी न करो । ज्ञानेन्द्रनाथ ने धीरे और धीमे से कहा, दूसरों के दुःख में जो रो सकता है, वह महत् है, लेकिन बिना वजह अपने को अपराधी बनाकर दुःखी करने का नाम दुर्बलता है । दुर्बलता को जगह न दो । आओ ।

मुड़कर सुरमा ने देखा । पति की ओर ताकते ही उनकी दोनों आंखें जबरन उमड़ आए आंसू से टलमल कर उठीं ।

ज्ञानेन्द्रनाथ बाबू ने उन्हें हलके से अपनी ओर खींचकर कंधे पर हाथ रखते हुए गाढ़े किंतु धीमे स्वर में कहा, मैं कह रहा हूं, तुम्हारा कोई दोष नहीं है, मेरा भी नहीं । नहीं । दोष सब उसका है ! हां,

कहता कि भगवान को भी नहीं था। हमलोगों का कोई अपराध नहीं है। विचारालय में ही कहो या किसी भी देश के लोगों के विचारालय में कहो, वहां सिद्धान्त—निर्दोष है? जडतारहित साफ गले के दृढ उच्चारण से कहा हुआ सिद्धान्त! कमजोरी ही एकमात्र गुनाह है, जिसके लिए प्राण आत्मा को अभिशाप देता है।

सुरमा स्थिर नेत्रों से अभिभूत की नाईं पति के मुंह की ओर देखती हुई ये बातें सुन रही थी। ज्ञानेन्द्रनाथ की नजर स्थिर थी। वह मुंह को जरा उठाकर घर के कोने की छत के एक हिस्से की तरफ देख रहे थे। वहां उस धुंधलके में दीवार पर किसी महाशास्त्र का एक पन्ना खुला पड़ा था और वह उसीको धीरे-धीरे दृढ स्वर से पढ़ते जा रहे थे।

—चलो, बाहर चलो। टहलने जाएंगे।

सुरमा यह जानती थी कि जब वह बाहर जाने को कहेंगे, दूर तक घूम आएंगे। पहले रात भर घूमा है, थक गए हैं, शराब पी है। रात में क्लब जाकर दोनों ने टेनिस खेला है। अब ऐसे घूमने की याद कम आती है। अबकी शायद दो साल के बाद इस तरह से याद आई। सीधी राह से तो वे घूमने को आने नहीं देते। बाकी के रास्ते घूमने उनके सामने आकर खड़ी होने की चेष्टा करती कि वे बात का मोड़ ही घुमा देते। दूसरी बात करने लगते। आज बड़े दिनों के बाद घुमावदार रास्ते से आकर वह सामने खड़ी हुई है। बाथरूम की खिड़की से आती सी उस छटा में मिस्टर ईश्वरांकुर। यह अमरीकिना इन दोनों के बीच आकर खड़ी हो गई है।

[घ]

गाड़ी चली।

सावन की रात। घटाएं फिर घनी हो आईं। पहली पांचसाला योजना की नई ऐसफाल्ट की सीधी समतल सड़क। शहर पार करके नदी पर बने नये बराज के साथ के पुल को पार करती हुई नई सड़क सखुए के जंगल के बीच से चली गई है। दोनों तरफ सखुआ वन में बरसाती बयार की शरारत। नये पत्तों पर वर्षा की गिरती हुई धारा से लगातार आवाज़ हो रही है। रास्ते के बीच-बीच में कहीं-कहीं केवड़े की झाड़ियां। केवड़े के फूल खिले हैं। खुशबू आ रही है। भीगी सड़क पर हेड लाइट की तेज रोशनी पड़ रही है, रास्ते के मोड़ पर वह रोशनी वन के सखुओं पर पड़ रही है। अजीब लग रही है।

गाड़ी चल रही है। उस समय प्रकृति का रूप मानो बदला। अंधेरा जैसे और गाढ़ा हो गया। लगने लगा, आसमान से चारों ओर घने काले मेघ पुंजों में माटी पर उतर आए हैं। मेघ नहीं हैं ये, पहाड़ हैं। यहां से अरण्य और पर्वतभूमि एक हो गई। सड़क सांप-सी हो गई, सचमुच ही सांप की तरह आती-जाती चढ़ने लगी। दूर कहीं झर-झर शब्द हो रहा है, लगातार। दिगन्तव्यापी प्रबल उल्लास का जैसे कहीं बाजा बज रहा हो। बाजा नहीं है, पहाड़ से झरना झर रहा है। गाड़ी में पति-पत्नी साथ बैठे हैं, घोषाल साहब सुरमा का एक हाथ अपने हाथ में लेकर बैठे हैं। बीच-बीच में एक-दो बात। टूटा-टूटा आलाप।

—यह वह जंगल नहीं है? जहां गलगलिया फूल के पेड़ हैं?

—वह रहा, बाएं। अभी-अभी वहां से निकल आया।

उसके बाद फिर दोनों चुप। गलगलिया फूल का रंग सोना जैसा होता है। फूल तोड़कर उन्होंने सुरमा को दिया था। सुरमा ने जूड़े में

सह नहीं सकती थी।

पहले घोषाल साहब सचमुच ही इसके बाद शराब पीते थे। मात्रा का हिसाब नहीं रखते थे। अब शराब नहीं पीते। इतने दिनों की पड़ी आदत एक ही दिन में छोड़ दी—महात्मा जी की मृत्यु के दिन सांझ को। शराब उन्होंने शुरू की थी सुरमा आदि के सराग में आकर। टेनिस खेलने के बाद क्लब में उसकी शुरुआत हुई। और वह बड़ी सुमति के साथ झमेला होने से। सुमति के मरने के बाद सुरमा से ब्याह करके भी बीच-बीच में यदि कोई बेचैनी की हालत हो जाती, तो वह ज्यादा पीते। गांधी जी के मरने पर एक दिन रात-दिन एक कमरे में चुप बैठे रहे। उपवास रखा। अपने जीवन में गांधी जी के बारे में उन्होंने जो भी मतव्य लिया था, डायरी के पन्ने उलट-उलटकर उनके पास लाल स्याही से लिखा—भूल, भूल। सुरमा उनके निकट कई बार गई और बोल न पाकर लौट आई। उसके बाद, रात के नौ बज रहे होंगे, कमरे से बाहर निकले। बैरे को पुकारकर कहा, सेलर में जितनी भी बोतलें हैं, ले आओ।

बोतल की ठेपी खोल-खोलकर माटी पर उड़ेल दी। और बोले, आज से मेरे भोजन में मछली-मास न रहे सुरमा।

सुरमा हैरान नहीं हुई। इस अजीब आदमी के किसी भी व्यवहार से अब उन्हें अचरज नहीं होता।

तब से ये बिलकुल बदल ही गए। अब ये और ही आदमी हो गए। मनुष्य बदलता जरूर है, हर दिन, हर पल बदलता है; प्रकृति का यह नियम है, परिवर्तन अनिवार्य है। लेकिन यह परिवर्तन तो जैसे दिशा परिवर्तन हो। एक बार नहीं, दो बार। पहला परिवर्तन सुमति के मरने के बाद। शांत, मितभाषी, कौतुक-प्रसन्न ज्ञानेन्द्रनाथ सुमति की मृत्यु के बाद आग की लपट से दीप्त और प्रखर हो उठे थे; बातचीत में तीखे

घडी की ओर ताका। बिजली की कौंध से अपने-आप आखें मुद आने जैसा ताकना। बोली, क्या बज रहा है ? अपनी घडी मे कुछ समझ नही पा रही हू। आख का पावर बहुत बढ गया है। देखो तो ?

ज्ञानेन्द्रनाथ ने आखें बन्द किए गाडी पर गद्दी के सहारे पीठ टिकाते हुए कहा, गाडी के डैश बोर्ड की घडी मे देखो।

डैश बोर्ड की घडी एक खासी बडी टाईमपीस थी। ऊपर से रेडियम दिया हुआ। जल-सी रही थी। सुरमा चौंक उठी, हाय राम, बारह बज गए !

—बारह ? पके स्वर से ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा। लेकिन इससे ज्यादा हडबडी नही जाहिर की। आखें मूदकर सोच रहे थे, आखें नही खोली।

गाडी मोड लो।—सुरमा ने कहा।

—मोड ले ?

—मोड नही लेगा ? लौटकर फिर तो नदियो से जूझना है। उधर सेसन्स चल रहा है, वही दस बजे—

फिर भी ज्ञानेन्द्रनाथ वैसे ही बैठे रहे।

परदा उठ जाने पर रगमच के दृश्यपट की तरह पूरा केस उनके दिमाग में जाग पडा।

बडा जटिल मामला। नाव उलट गई थी। वह नाव छोटे भाई की गल्ती से डूबी। वे पानी मे गिर पडे थे। छोटे भाई ने बडे भाई को जकडकर पकड लिया था। बडे भाई ने अपने को छुडाना चाहा। नहीं छुडा सका। आखिर छोटे भाई की गरदन पर हाथ जा रहा। और…। यह उसने स्वीकार किया है। परन्तु…।

मुर्शिम की याद आई।

फिर एक लम्बा निश्वास छोडा।

सुरमा भी स्तब्ध बैठी रही। ज्ञानेन्द्रनाथ भी स्तब्ध बैठे थे, लेकिन

मामले की चिन्ता में डूब गए थे। सुरमा यह समझ रही थीं। ज्ञानेन्द्रनाथ की पेशानी पर लकीरें उग आई थी। यह फिर भी बरदाश्त होता है। बरदाश्त किए बिना उपाय नहीं। यह कर्त्तव्य है। मगर यह हुआ क्या उनके जीवन में ? नहीं पाया। उनके साथ चल नहीं सकी ? नहीं···। खो गई ? टपटप करके उनकी आखों से आसू टपकने लगे। किन्तु ज्ञानेन्द्रनाथ को इसका पता नहीं चला, अंधेरी गाड़ी में वे आखें बन्द किए ही बैठे थे। उनके मन की आखों में तिर आई अदालत, जूरी, सरकारी वकील, मुजरिम।

घडी की ओर ताका। बिजली की कौंध से अपने-आप आँखें मुँद आने जैसा लगना। बोली, क्या बज रहा है? अपनी घडी से कुछ समझ नही पा रही हूँ। आँख का पावर बहुत बढ़ गया है। देखो तो?

ज्ञानेन्द्रनाथ ने आँखें बन्द किए गाडी पर गद्दी के सहारे पीठ टिकाये हुए कहा, गाडी मे डैश बोर्ड की घडी मे देखो।

डैश बोर्ड की घडी एक खासी बडी टाईमपीस थी। ऊपर से रेडियम दिया हुआ। जल-सी रही थी। सुरमा चौंक उठी, हाय राम, बारह बज गए!

—बारह? भरे स्वर से ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा। लेकिन इसमें ज्यादा हडबडी नही जाहिर की। आँखें मूँदकर सोच रहे थे, आँखें नही खोली।

गाडी मोड लो।—सुरमा ने कहा।

—मोड ले?

—मोड नही लेगा? लौटकर फिर तो नदियों से जूझना है। उधर सेसन्स चल रहा है, वही दस बजे—

फिर भी ज्ञानेन्द्रनाथ वैसे ही बैठे रहे।

परदा उठ जाने पर रंगमच के दृश्यपट की तरह पूरा केस उनके दिमाग मे जाग पडा।

बडा जटिल मामला। नाव उलट गई थी। वह नाव छोटे भाई की गल्ती से डूबी। वे पानी मे गिर पडे थे। छोटे भाई ने बडे भाई को जकडकर पकड लिया था। बडे भाई ने अपने को छुडाना चाहा। नही छुडा सका। आखिर छोटे भाई की गरदन पर हाथ जा रहा। और···। यह उसने स्वीकार किया है। परन्तु··।

मुजरिम की याद आई।

फिर एक लम्बा निश्वास छोडा।

सुरमा भी स्तब्ध बैठी रही। ज्ञानेन्द्रनाथ भी स्तब्ध बैठे थे, लेकिन

मामले की चिन्ता में डूब गए थे। सुरमा यह समझ रही थी। ज्ञानेन्द्रनाथ की पेशानी पर लकीरें उग आई थीं। यह फिर भी बरदाश्त होता है। बरदाश्त किए बिना उपाय नहीं। यह कर्त्तव्य है। मगर यह हुआ क्या उनके जीवन में ? नहीं पाया। उनके साथ चल नहीं सकी ? नहीं'''। खो गई ? टपटप करके उनकी आंखों से आंसू टपकने लगे। किन्तु ज्ञानेन्द्रनाथ को इसका पता नहीं चला, अंधेरी गाड़ी में वे आंखें बन्द किए ही बैठे थे। उनके मन की आंखों में तिर आई अदालत, जूरी, सरकारी वकील, मुजरिम।

घडी की ओर ताका। बिजली की कौंध से अपने-आप आखें मुद आने जैसा ताकना। बोली, क्या बज रहा है? अपनी घडी मे कुछ समझ नही पा रही हू। आज का पावर बहुत बढ गया है। देखो तो?

ज्ञानेन्द्रनाथ ने आखें बन्द किए गाडी पर गद्दी के सहारे पीठ टिकाए हुए कहा, गाडी के डैश बोर्ड की घडी मे देखो।

डैश बोर्ड की घडी एक खासी बडी टाईमपीस थी। ऊपर से रेडियम दिया हुआ। जल-सी रही थी। सुरमा चौंक उठी, हाय राम, बारह बज गए!

—बारह? थके स्वर से ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा। लेकिन इससे ज्यादा हडबडी नही जाहिर की। आखें मूदकर सोच रहे थे, आखें नही खोलीं।

गाडी मोड लो।—सुरमा ने कहा।

—मोड ले?

—मोड नही लेगा? लौटकर फिर तो नथियो से जूझना है। उधर सेसन्ज चल रहा है, वही दस बजे—

फिर भी ज्ञानेन्द्रनाथ वैसे ही बैठे रहे।

परदा उठ जाने पर रगमच के दृश्यपट की तरह पूरा केस उनके दिमाग मे

चार

दूसरे दिन। मुजरिम कठघरे में हीरू उसी ढंग से खड़ा था। उम्र का अन्दाजा नहीं लगाया जा सकेगा, किन्तु उसके सारे बदन में परिणत यौवन की तन्दुरुस्ती थी। केवल पौष्टिक खाद्य से गठा मोटा-सोटा कोमल शरीर नहीं, उपयुक्त आहार और परिश्रम से एक-एक पेशी के सुदृढ़ छंद से गठा हुआ शरीर। गौर करने से लगता है, जन्म की घड़ी से ही वह देह के उपादान की सहजता और दृढ़ संकल्प लिए मशक्कत करने की आदत के साथ ही पैदा हुआ है। ऊंचाई में कुछ छोटा। तांबे-सा रंग। चेहरा देखने से मन की असली बनावट समझ में नहीं आती, काफी दिनों से विचाराधीन रहने के कारण सर के बाल बढ़ गए हैं, चेहरे पर दाढ़ी-मूंछ बढ़ी हो आई है। हां, पहले की तरह रूखापन नहीं है बाल में, अब बंदियों को लगाने के लिए तेल मिलता है। तो भी बाल, मूंछ-दाढ़ी बेतरतीब—मानो उस अभागे के विभ्रांत मन का आभास उन पर झलक आया है। हीरू जैसे नीचे आग वाली माटी के ऊपर का रूखापन। नाक मोटी, आंखें बड़ी-बड़ी और नजर उग्र। होंठ हैं कि कठोर, कुछ थाह नहीं पा रहे हैं ज्ञानेन्द्रनाथ। पहनावे में सादा मोटा कपड़ा, गले में तुल

गवाह नहीं। मुजरिम कहता है, वह नहीं जानता। और यह भी कहता है, अगर उसने हत्या की है, तो वह मौत की ही सज़ा चाहता है। मुजरिम वैष्णव है। इस विचाराधीन अवस्था में भी वह चन्दन-टीका करता है, यह देखने में आ रहा है। कभी उसने विरागी होकर अपना घर छोड़ दिया था, जीव-हत्या से कुल-धर्म पर आंच आने का उसे पछतावा हुआ था। बारह साल के बाद घर लौटकर उसने अपने सौतेले भाई को गहरे स्नेह से कलेजे से लगा लिया था। उस भाई को उसी ने पाल-पोसकर बीस साल का जवान बनाया था। इस दृष्टि से देखने से जरूर ही यह लगेगा। और हम अवश्य ही इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि मुजरिम ने जब भाई का गला धर दबाया था, तो उसमें मौलिक जीवन की, आत्मरक्षा की पाशविक चेतना के सिवाय मानवीय ज्ञान या चेतना का बिलकुल लोप हो गया था। ऐसी स्थिति में उसने जो कसूर किया है, वह बहुत मामूली है, यहां तक कि उसे निर्दोष भी कहा जा सकता है।

जज ज्ञानेन्द्रनाथ ने फिर मुजरिम की ओर ताका। वह माटी के खिलौने-सा खड़ा था। ठीक उन्हीं जैसा भावविहीन मुखड़ा। उन्हें पता है, इस समय उनके चेहरे की एक भी रेखा नहीं बदलती, निर्विकार की नाईं वह सुनते जाते हैं। थोड़ा-सा अन्तर है। मुजरिम की निगाहों में आश्चर्य की छाप है। इस विश्लेषण ने उसे विस्मित कर दिया है—विह्वलता के बावजूद विस्मय ने उसे सजग कर रखा है।

अविनाश बाबू कह रहे थे, लेकिन यदि इस आदमी ने अचानक मिल गए मौका, लोभ, और हिंसा से अपने हाथों पाले हुए भाई की हत्या की हो, तो यह आखिरी नृशंस है, आखिरी चालाक नृशंस आदमी है। और मेरा दृढ़ विश्वास है, यह वही है। फिलहाल यह बात असंभव लगेगी। लगेगा और लगना उचित भी है, जो आदमी बकरा मारने के पश्चात्ताप से संन्यासी बना, जिसने भाई को अपनी छाती से लगाकर पाला, जिसके

ऐसे में दो बातें हो सकती हैं। एक कि कंठनाली को कसकर दबाने से घुटन भर गया और छोड दिया या अवश सा हो पडा या मौत से कुछ पहले मृतक जैसी ही अचेतन अवस्था में वह निढाल हो गया। बात चाहे जो भी क्यों न हो मौत इसी वजह से मुलज़िम के द्वारा ही हुई है।

इस सिद्धान्त पर पहुंचने के बाद भी दो बातें विचार करने की रह जाती हैं। जटिल हैं। बहुत ही जटिल। दो बातों में से एक तो यह कि मुजरिम ने आत्मरक्षा के लिए यानी मौत की चोट से सारी मानवीय चेतना खोकर ऐसी स्थिति में पाशविक चेतना के लिए बहुत ही स्वाभाविक प्रेरणा से कुछ घुटन या गला दबोच लिया था या उससे पहले ही

—वही सनातन त्रयी या त्रिकोण योर आनर।

—दो स्त्रियां, एक पुरुष—?

—यहां दो पुरुष एवं स्त्री योर आनर।

—येस्।

अविनाश बाबू ने कहा, और वह एक लीलामयी स्त्री।

—लीलामयी ? यू मीन ए माडर्न गर्ल ?

—नहीं। योर आनर, वह स्त्री लास्यमयी है। उससे भी ज्यादा बदचलन। उसी बस्ती के एक गरीब मजूरे की बेटी। नगेन और खगेन के बाप के जमाने से ही उस स्त्री के मां-बाप से अनेक कार्यों के सिलसिले में घनिष्ठता थी। खेती बारी के दिनों उसके मा-बाप उनके खेतों में काम करते थे। अंतिम दिनों, नगेन-खगेन का बाप जब कई वर्षों तक बीमार होकर खाट की शरण लिए था, तब उनलोगों ने स्थायी रूप से किसान का भी काम किया था। उस लड़की की मां का वहां रोज-रोज का जाना-आना था। झाड़ू-बुहारू करती, धान उबालकर चावल कूटती—माहवारी पर नौकरानी का काम करती थी। तभी से वह लड़की—चंपा—भी मां के साथ दोनो शाम इनके यहां आती थी। उम्र में वह खगेन की ही हमउम्र थी। दो-एक साल की बड़ी। खगेन के साथ वह खेला करती थी। बाद में उसकी शादी हो गई। वह अपनी ससुराल चली गई। उस समय वह छोटी थी। हमलोगों के यहां निम्न श्रेणी के लोगों में सात ही आठ साल की उम्र में विवाह हो जाता है, यह सभी को मालूम है। उसके बाद इस घटना के दो साल पहले वह जब विधवा होकर लौट आई, तो वह युवती थी और स्वभाव से पूरी स्वेच्छाचारिणी। अपने पीहर में ही उसने यह स्वभाव बना लिया था और जहां तक ख्याल है जन्म से वह इस प्रकृति की थी। क्योंकि ससुराल में रहते हुए ही उसकी इस स्वभाव के कारण बड़ी बदनामी फैली थी। दो-एक मामले अदालत तक

कपाल पर चन्दन-तिलक है, गले में कंठी है, जो आदमी उस इलाके का नामी वैष्णव है, वह भला यह काम कर सकता है ? हां, कर सकता है। मैं कहता हूं, कर सकता है। इस विषय में मुझे दो बातें करनी हैं। पहली बात यह कि आदमी की बचपन की आदत, उसकी जन्म जात प्रवृत्ति अवचेतन में स्थायी रूप से रहती है। वह मरती नहीं, दबी रहती है। घटनाओं के घात प्रतिघात से मानव-जीवन प्रतिपल परिवर्तनशील है। नित्य के उस प्रतिपल परिवर्त्तन में ही उसके जीवन का प्रकाश है और उसी प्रकाश में बहुत बार क्रांतिकारी परिवर्त्तन भी हो सकता है। जिस रास्ते से वह चलता है, हठात् उसका उलटा रास्ता पकड़कर चलना शुरू कर देता है। यौर आनर, गृह-धर्म आदमी का स्वाभाविक धर्म है। हठात् कोई आदमी सन्यासी हो गया, और फिर देखा कि वह गेरुआ उतारकर गिरस्ती करने लगा। मामला मुकदमा, जमीन-जायदाद के लिए लड़ाई-झगड़ा वह साधारण गृहस्थ से ज्यादा आसक्ति और कुटिलता के साथ करता है। जो आदमी स्त्री के वियोग में महाकाव्य लिखता है, कुछ साल बाद वही आदमी ब्याह करके नये प्रेम की कविता लिखता है।

[ख]

ज्ञानेन्द्र बाबू ने कहा, संक्षेप कीजिए अविनाश बाबू। बी ब्रीफ प्लीज।

येस् यौर आनर, अब मुझे थोड़ा ही कहना है। वह यह कि मुजरिम नगेन में और एक परिवर्त्तन हुआ था। हमें उसका परिचय या प्रमाण मिलता है। इस घटना के समय वह छोटे भाई से अलग होने का इन्तजाम कर रहा था। लेकिन यह बाह्य है। भीतर दो इंटरनल ट्राएगल था—

—व्हाट ? भवों पर बल डालकर सजग होकर ज्ञानेन्द्र बाबू ने देखा।

—वही सनातन त्रयी का विरोध योर आनर।

—दो स्त्रियां, एक पुरुष—?

—यहां दो पुरुष एक स्त्री योर आनर।

—येस्।

अविनाश बाबू ने कहा, और वह एक लीलामयी स्त्री।

—लीलामयी? यू मीन ए माडर्न गर्ल?

—नहीं। योर आनर, वह स्त्री लास्यमयी है। उससे भी ज्यादा बदचलन। उसी बस्ती के एक गरीब मजूरे की बेटी। नगेन और खगेन के बाप के जमाने से ही उस स्त्री के मां-बाप से अनेक कार्यों के सिलसिले में घनिष्ठता थी। खेती-बारी के दिनों उसके मां-बाप उनके खेतों में काम करते थे। अंतिम दिनों, नगेन-खगेन का बाप जब कई वर्षों तक बीमार होकर खाट की शरण लिए था, तब उनलोगों ने स्थायी रूप में हिसाब का भी काम किया था। उस लड़की की मां का वहां रोज-रोज का आना-जाना था। झाड़ू-बुहारू करती, धान उबालकर चावल कूटती—माहवारी पर नौकरानी का काम करती थी। तभी से वह लड़की—चंपा—भी मां के साथ दोनों शाम इनके यहां आती थी। उम्र में वह खगेन की ही हमउम्र थी। दो-एक साल की बड़ी। खगेन के साथ वह खेला करती थी। बाद में उसकी शादी हो गई। वह अपनी ससुराल चली गई। उस समय वह छोटी थी। हमलोगों के यहां निम्न श्रेणी के लोगों में सात ही आठ साल की उम्र में विवाह हो जाता है, यह सभी को मालूम है। उसके बाद इस घटना के दो साल पहले वह जब विधवा होकर लौट आई, तो वह युवती थी और स्वभाव में पूरी स्वेच्छाचारिणी। अपने पीहर में ही उसने यह स्वभाव बना लिया था और जहां तक ख्याल है, जन्म से वह इस प्रकृति की थी। क्योंकि ससुराल में रहते हुए ही उसकी इस स्वभाव के कारण बड़ी बदनामी फैली थी। दो-एक मामले अदालत तक

पहुचे थे। वह चपा लौटी तो स्वाभाविक एव सहज भाव से ही अपने बचपन के प्रियदर्शन साथी खगेन को अपनी ओर आकृष्ट किया। उसके बाद उस पर आकृष्ट हुआ खगेन का बडा भाई। यही चपा ही मुकदमे की प्रधान गवाह है। मुजरिम नगेन पहले तो युवक-युवती मे मनस्ताप लाने वाले की भूमिका मे उतरा। अपने भाई को उस तरुणी के मोह से छुडाने की ही उसने कोशिश की थी। उस लडकी से भी उसे छोड देने का आग्रह किया था।

हसकर अविनाश बाबू बोले, उस समय वह साधु-जैसा बहुत-बहुत धर्मोपदेश दिया करता था। उसके बाद ।

फिर हसे अविनाश बाबू। बोले, उसके जीवन से साधु की केंचुल छूट गिरी। वह उस लडकी की ओर खिंचा और उसके पीछे पागल हो गया। चपा से उसने ब्याह का प्रस्ताव तक किया था। सामयिक तौर पर चपा भी उसके प्रति आकृष्ट हुई थी। क्योंकि सन्यासी होकर बडा भाई जब घर से चला गया था और बाप की मरण सेज के सामने यह कहा कि मैं गिरस्ती नही बसाऊगा, छोटे भाई को सभालकर, लायक बनाकर चला जाऊगा, तो बपौती सपत्ति पर उसका कोई हक नही रहा। जायदाद का अकेला मालिक खगेन हुआ। लेकिन मुजरिम नगेन ने आगे चलकर इस बात से इनकार किया। कहा, जुबानी बात की कीमत क्या है? उसने साफ कहा, कि मेरा वह मन अब नही है। कहा, तेरे ही लिए मुझे गिरस्ती मे रहना पडा था, उस गिरस्ती ने अब मुझे जकड लिया है। तेरे ही लिए मुझे चपा के ससर्ग मे आना पडा। तू ने ही मुझे चपा के मोह मे ढकेल दिया है। अब माला चदन करके मैं उसे वैष्णवी बनाऊगा और अपना अखाडा बसाऊगा। जायदाद का हिस्सा मुझे लेना ही पडेगा, लूगा मैं।

विरोध की एक गाठ से दूसरी गाठ जुड गई और मामला पेचीदा

दुकान का अपना हिस्सा खगेन ने उसी दिन सवेरे अपने दोस्त को बेच दिया था। कहा था, नदी पार की जमीन का बटवारा होते ही मैं गाव छोड़कर पहले नदी के उस पार की बस्ती म जाऊगा। और वहा नगेन के किसी दुश्मन के हाथ सारा कुछ बेच-खोचकर कही दूर चला जाऊगा। इसीलिए वह बेसब्री से नगेन का इतजार कर रहा था। लेकिन जब नगेन नही आया, तो वही उसके घर तक गया और उसे बुला लाया। दुकान नदी जाने के रास्ते मे ही पड़ती थी। खगेन का वह दोस्त कहता है, नदी पार जाने के लिए दुकान तक आने के बाद भी नगेन ने कहा था, खगेन, आज रहने दो। आज मेरी तबीयत ठीक नही है। और यह भी कहा, आज यह बेला अच्छी भी नही है, वृहस्पतिवार का तीसरा पहर। तिस पर कैसी तो घुमड-सी है। चैत महीने का आखिर है। कही हवा जोरो की हो जाए तो तुम्हारे लिए मुश्किल होगी।

खगेन को ठीक से तैरना नही आता था। पानी से वह डरता था। लेकिन उसने कहा, नही। तुमसे अब मैं कोई नाता नही रखना चाहता। इस खेत पर मेड पड़ते ही सात डोरी की अन्तिम डोरी कट जाएगी। आज इसे खत्म करना ही है।

लम्बा निश्वास फेंककर नगेन ने कहा, तो फिर चलो। इसी मे उस थान का साफ इशारा है। अपनी वर्बर प्रकृति के निकट वह बेबस हो गया था। यह लबा निश्वास उसकी निशानी है। और बाद की घटना, जिसका वर्णन मैं विस्तार से कर चुका हू, घटी। पानी मे गिर पड़ने का लाभ उठाकर उसने बर्बर प्रवृत्ति की ताड़ना से यह निष्ठुर हत्या की।

उधर घड़ियाल मे एक का घटा बजा।

इजलास की घडी उससे दो मिनट पीछे थी।

पांच

अपने खास कमरे में जाकर आरामकुर्सी पर लेट गए आनन्द बाबू। शरीर उनका आज बड़ा थका थका-सा था। सुबह से तबीयत भारी लग रही थी। माथा भिनभिना रहा था। ललाट पर हाथ फेरकर आंखें बंद करके लेटे रहे।

अरदली सामने मेज रख गया। हल्की-सी की आवाज हुई। आंखें बंद किए किए ही समझ गए। वैसी ही हालत में ... और काफी। और कुछ नहीं।

आज सुबह जगने के बाद में ही ऐसा अनमना ... कहा तुम्हारी तबीयत ... का नजर बड़ी पैनी है। उन्होंने भी ताड़ लिया। ... तो खराब हो गई है।

... माना नहीं। बोले न ... तबीयत ठीक है। ... कैसे छिप जाएगी ? उसका असर तो पड़ता ही। वह असर तो तुम्हारे भी चेहरे पर पड़ा है। हंस के कहा।

—और फिर ... की बात—।

—आ ... में ही ठीक हो जाएगा।

और उन्होंने फाईल खींच ली थी। और जो सोचा था, वही हुआ। एक उदास तेवर सुरमा वहां से चली गई थी। फाईल खोलने का मतलब ही यही है।

प्लीज सुरमा, अभी मुझे काम करने दो।

सुमति नहीं जाती थी। लेकिन सुरमा चली जाती है। इस कर्तव्य के महत्व को सुरमा से ज्यादा कौन समझेगा? सुरमा जज की बेटी हैं; जज की पत्नी। खुद शिक्षिता भी हैं। सुमति को अत तक कहना पड़ता था—मुझे काम करने दो सुमति! ऐसा करने से आखिरकार मेरी नौकरी जाएगी। सुमति नाराज होकर चली जाती।

सुमति के स्वभाव को सोचने के लिए ही उन्होंने फाईल खींच ली थी। नहीं तो, फाईल देखना ऐसा कुछ जरूरी नहीं था। असल में कल रात की चिंता का स्रोत उनके दिमाग में बंधे सोते-सा घुमड़ रहा था। एक-एक कर सत्य का नया प्रकाश प्रवाह-सा आ-आकर उसमें गति का सचार कर रहा था। लेकिन चूंकि समय नहीं था, इसलिए आगे नहीं बढ़ पा रहा था। थकावट से चूर होकर वे लेट गए थे। नींद भी नहीं आई। सिर्फ एक सपनों से भरी तंद्रा में पड़े थे। मगर आश्चर्य है, सपने में एक बार भी सुमति आकर नहीं खड़ी हुई। सवेरे नींद टूटते ही लेकिन आंखों में सबसे पहले सुमति का ही मुखड़ा तिर आया। अजीब है! अवचेतन में नहीं, सचेतन मन का दरवाजा खोलकर सजगता ही में आकर खड़ी हो रही है वह। सुमति के ही सूत्र से कल की अधूरी चिंता मन में जागी। उन्हें लाइफ फोर्स वाली बात याद आ गई। कल झरने के कल-कल में उन्होंने प्राण-शक्ति का संगीत सुना था। वह झर-झर अभी भी उनके कानों में गूंज रहा था। वह चाहे एक बिंदु हो चाहे विपुल विशाल, आकांक्षा उसकी सर्वग्रासी है। लेकिन शक्ति जहां जितनी है, पावना का परिमाण उसके लिए उतना ही निश्चित है, उससे एक कतरा भी ज्यादा नहीं।

ब्रह्मा का कमंडल कितना छोटा-सा है, बहुत जोर तो सेर-सवा सेर पानी—और वह पानी विष्णु-चरण से निकलने की महिमा और गुण के कारण सारे आर्यावर्त्त को प्लावित करता हुआ बंगोपसागर में आ मिला है। सुमति के मुह से यह बात सुनकर वह हसते थे। कहते, अरे नही, यह नही होता सुमति ! एक कमंडल पानी उडेलकर देख तो लो, कहा तक जाता है। सुमति रज हो जाती। उन्हें अधार्मिक, अविश्वासी कहती।

बात पहले दार्जिलिंग में हुई थी। बस पर।

हिमालय के माथे पर तुषार-प्राचीर दिखाकर भी वह सुमति को समझा नही पाए थे। अनबुझ शक्ति का दावा सुमति जैसा ही सर्वग्रासी होता है। वह दावा पूरा नहीं होता। पीडा में उसका अंत अवश्यभावी है। प्रकृति का अमोघ निर्देश आग, पानी, हवा—ये लडाई करके अपना अंत लाकर स्थिर होते हैं, लेकिन जीवन चीख-चीखकर मरता है, पशु चीत्कार करके जता जाते हैं, आदमी जार-बेजार रोता है, श्राप देता है। अवश्य प्रकृति के मौलिक धर्म को पीछे छोड़कर मनुष्य ने अपने एक निजी धर्म का आविष्कार किया है। अजीब आश्चर्यजनक है उसका धर्म। मौत की पीडा से तडपता हुआ प्यासा आदमी अपने मुह के सामने आए हुए पानी को दूसरे प्यासे की ओर बढाते हुए कहता है, दाई नीड इज ग्रेटर दैन माइन। ऐसी लाखो-लाख घटनाए घट चुकी हैं। रोज ही घटती हैं, हर दम, हर घडी। लेकिन इस महासत्य से कौन इनकार कर सकता है कि जिस प्यासे ने अपने मुह के आगे का पानी दूसरे को दे दिया था, उसकी प्यास की पीडा का अंत नही था। प्रकृति का धर्म बडा अमोघ है। उसे काटा नहीं जा सकता। मनुष्य के जीवन में भी यही तो द्वंद्व है, यही तो संग्राम है। यही पर तो उसकी निष्ठुर यत्रणा है। प्रकृति-धर्म की दी हुई सजा। एकाएक आखें खोलकर ज्ञानेन्द्र बाबू ने सामने की ओर देखा। देखते ही रहे।

[८]

अरदली ने लाकर ट्रे रखी।

ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा, कॉफी बनाओ। छुरी-कांटे को छूकर हाथ से ही टोस्ट को उठा लिया। आज सुबह से ही प्राय भूख नहीं थी। रात को लौटकर खाते-खाते साढ़े बारह बज गए थे। उसके बाद भी घण्टे भर जगे बैठे थे। इसी चिन्ता में डूबे हुए थे। चिन्ता यदि एक बार जग पड़ी तो फिर उससे छुटकारा नहीं। इस देश में शास्त्रकारों ने कहा है, चिन्ता अनबुझ चिता है। वह जलाती है। गजब की उपमा है। फिर भी उन्हें खूब अच्छी नहीं लगती। वह चिता नहीं कहते। प्राण ही वह्नि है। वस्तुजगत की घटनाए समिध, चिन्ता उसकी शिखा है। चिन्ता ही तो चैतन्य को प्रकाशित करती है, चैतन्य उस शिखा की जलती हुई लौ

है। वह अपने आपको आत्मोविन नम्नी है और अपनी जोन से विप्र-रम्य को प्रमाणित करनी है। जो लोग गुफा में रहते हैं, तप करते हैं, आहार के बारे में उनकी उदासीनता के मर्म को उन्होंने उपलब्धि की। रात जागने में उनकी तबीयत क्या बहुत ज्यादा नासाज हुई थी। नहीं, सो नहीं हुई। हां, थोड़ा यह अनुभव किया था कि तमाम रात पतली नींद में भी यह चिन्ता दुर्बोध्य सपने जैसी उनके मन में घूमती रही है। सवेरे ही वह चिन्ता धुआती हुई हालत से फिर जल उठी है। उसी में इतने निमग्न थे कि खाने को जी न चाहा। टोस्ट खाने में अच्छा लग रहा था। टोस्ट बड़ा प्रिय है उन्हें। आज ही नहीं, कालेज-जीवन से ही। अपनी मुंसिफी के आरम्भ में काफी कोशिश के बाद भी साम-विहान टोस्ट का प्रबन्ध वह घर में नहीं कर सके। सुमति को यह हरगिज पसन्द नहीं था। वह पूरी-तरकारी पसन्द करती थी, तरकारी में आलू का दम। बड़ी मान लिया था उन्होंने। सुरमा ने सुमति की इस रुचि के प्रति का नाम दिया था, टोस्टोफोबिया। इसके लिए भी उसने सुमति को काफी चिढ़ाया। अपने यहां चाय पर बुलाकर इन्हें टोस्ट, अण्डा, केक, चाय देती थी, सुमति को देती थी, नमकीन, कचौरी, मिठाई। सुमति मन ही मन खीजती, मगर मुंह से कुछ नहीं बोलती। सुमति को संस्कार बहुत था। जात-पात पर उसे कट्टर विश्वास था। इसी नाते उसकी यह धारणा थी कि खान-पान में जिसकी रुचि विधर्मी की है, मन-प्राण से भी वह विधर्म का अनुरागी है। कितनी बार उसने कहा, खाकर ही मनुष्य जीता है। पैदा होते ही सबसे पहले खाना चाहता है। वह खाना अगर यहां का न जंचे, विदेश का जंचे, तो वह देश छोड़कर विदेश जाकर ही रहेगा। जिसे इस धर्म का खाद्य पसन्द नहीं, और धर्म का खाद्य पसन्द है, वह धर्म को जरूर छोड़ेगा। मुझे मालूम है, तुम्हें अपने यहां का कुछ पसन्द नहीं है। धर्म नहीं, खाद्य नहीं, मैं नहीं। इसीलिए मैं तुम्हें फूटी आंखों न

सुहाती।

सुरमा इतना नही सोच सकी थी। उन्होने भी सुरमा को नही बताया। सुमति को चिढाने के लिए ही वह बीच-बीच मे सैंडविच, कटलेट, केक, पुडिंग बनाकर अरदली के हाथ भेज देती थी। लिख भेजती थी, अपने हाथो से बनाया है, जीजा जी को पसन्द है, इसीलिए भेज रही हू। सैंडविच मे चिकेन है, कटलेट मे हड्डी के टुकडे को देखकर भूल नही होगी, केक और पुडिंग मे अण्डा है। तुम्हे छूत-छात का रोग भी है, घर मे एक ग्वाल-देवता की तसवीर भी है, इसीसे बताया।

अरदली। वापस चला जाता तो सुमति का गुस्सा फट पडता।

फेंक देती। पवित्रता की दुहाई देकर नहाती।

सुरमा को इन बातो का पता होता। मुलाकात होने पर खिलखिलाकर हसती। कहती, कैसा रहा ?

वह मजबूर होकर हसते। हसना पडता। नही तो जिन्दगी उनकी भार हो उठी थी।

[ग]

बेचारी सुरमा। इन सब बातो से उनके मन म एक छिपी हुई ग्लानि पुजीभूत हो गई है। बीच-बीच मे जब अशरीरिणी सुमति उन दोनो के बीच आकर खडी होती है तो उनके बदरग हुए चेहरे को देख कर वह समझ लेती है। सुमति की मृत्यु के लिए जिम्मेदार कोई नही है। सुरमा से उनकी स्पष्ट बात नही होती, लेकिन इशारे से होती है। वह बराबर कहते आए है, कल भी कहा है, नाहक ही अपने को मत दुखाओ। मैंने बहुत बारीकी से विचार करके देखा है। फिर भी उसके मन की

ग्लानि नही मिटती । ज्ञानेन्द्रनाथ समझते हैं सुरमा मन ही मन अपने से
पूछती है, मैंने इतना सब क्यो किया ? उसका जी दुखाते हुए ऐसा खेल
क्यों खेलने गई ? सुमति और जज साहब के बीच आकर ऐसा खेल में नही
खेलती तो हो सकता है, सुमति का ऐसा शोचनीय परिणाम नही होता ।
किसी हद तक बात सही है । नही । जिम्मेदारी पहले सुमति की अपनी
है । आग उसने खुद ही जलाई सुरमा ने उसे फूका उसका जलावन जुटाया ।
ईर्ष्या की आग । वही आग बाहर लहक उठी । सच पूछिए तो उसके मन
की आग वास्तव मे टेनिस-फाइनल की जीत के बाद की ली गई तसवीर
से जल उठी थी । टेनिस-फाइनल जीतने के बाद एक साथ उन दोनो की
तसवीर । अपने अनजानते ही दोनो एक दूसरे को देखकर हस पडे थे ।
सुरमा की अपनी प्रति उसके घर मे टगी हुई है । टेनिस-फाइनल के कई
दिन बाद फोटोग्राफर ने माउट करके तसवीर की तीन प्रतिया उनके यहा
और तीन प्रतिया जज साहब की कोठी मे भिजवा दी थी । वह खुद उस
समय कचहरी मे थे । वह या सुरमा—दो मे से कोई इस बात को नही
जानते थे कि वे एक दूसरे को देखकर हस पडे हैं । उनकी दृष्टि मे गाढे
अनुराग की व्यजना फूट उठी है । जानते होते तो जरूर होशियार हो
जाते । फोटोग्राफर को मना कर देते कि तसवीर की प्रतिया घर न भेजे,
शायद हो कि उस तसवीर को घर मे कभी जाने ही न देते । जीवन
के प्रेम के कठिन वेग को उन्होंने उस कगार की तरह कठिन बाध से
बाध रक्खा था । प्रकृति से निर्देशित जो राह थी उनकी, सुरमा की दोनो
बाहो के किनारे के बीच की राह, जो पथ प्रशस्त और निम्न समतल
भूमि की प्रसन्नता से उज्ज्वल था—उस पथ पर उन्होंने उस वेग को
बहने नहीं दिया । जीवन के अग-अग मे टूटन-सी हो रही थी, वह
चौचीर हो जाना चाह रहा था, तो भी उस बधन को उन्होंने जरा भी
ढीला नही पडने दिया । नथिंग इम्मोरल, नथिंग इल्लिगल । नीति की

नजर से, देशाचार, कानून—सब कुछ की नजर से निरपराध थे, निर्दोष। *लेकिन इसपर सुमति ने यकीन नहीं किया। यकीन करना नहीं चाहा।* उनके घर लौटते ही सुमति वे तसवीरें लगभग उनके मुंह पर फेंककर लावा उगलने से पहले ज्वालामुखी जैसी चुप होकर खड़ी हो गई थी।

तसवीरें सामने बिखरी पड़ी थीं। एक मेज़ पर, एक उनके पांव के पास के फर्श पर, तीसरी भी फर्श पर ही गिरी थी, लेकिन जैसे थोसकर, उलटी।

उन तसवीरों को देखकर वह चौंक उठे थे।

सुमति ने बेदर्द स्वर में कहा था, शर्म आ रही है? ह्या शर्म है तुम्हें? बेह्या, बदचलन—

लमहे में अपने को जब्त करके उन्होंने धीर-गम्भीर गले से कहा था, सुमति!

स्वर में उसे सावधान कर देने की ध्वनि थी।

सुमति ने उसकी परवाह न की। उसी तरह चिल्लाकर बोल उठी थी, जरा तसवीर की तरफ अच्छी तरह से देखो, देखो कि उसमें कौन-सा परिचय लिखा है।

ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा था, बंधुत्व का। और मैच जीतने की खुशी का।

—काहे का?

—बन्धुत्व का?

—बन्धुत्व का? औरत-मर्द का बन्धुत्व? क्या नाम है उसका?

—बन्धुत्व।

—नहीं। प्यार।

—बन्धुत्व भी प्यार है। वह समझने की जुर्रत तुममें नहीं है। सन्देह से तुम अन्धी हो गई हो, इतरता की अन्तिम सीढ़ी पर उतर

आई हो।

और तुम उस अंतिम सीढी के भी नीचे जो पाप का कीचड है, उस कीचड मे सर से पाव तक डूब गए हो। तुम चरित्रहीन हो, नीच से भी नीच हो, अनत नरक मे भी तुम्हे जगह नही मिलेगी।

इतना कहकर ही वह कमरे से बाहर चली गई थी। काम से थके हुए थे वह, भूखे थे, परतु विश्राम और आहार पल भर म जहर हो उठा। वह भी घर से बाहर चले गए थे। डर भी हो आया था। सुमति से नही, अपने गुस्से से। भभकते आते क्रोध और क्षोभ को ज़ब्त करने का मौका पाकर जी से गए थे वह। उन्मत्त की नाईं उन्होने अपनी मृत्यु मागी थी। सुमति को उन्होने वैधव्य का दण्ड देना चाहा था। साइकिल पर सवार हो शहर के एक दूर छोर पर जाकर युत हुए-से आदमी जैसा चुप बैठ गए थे। पहले केवल पागल-सी चिंता नही-नही, चिंता नही, कामना। मृत्यु की कामना, ससार छोड देने की कामना, सुमति के हाथ से छुटकारा पाने की कामना। उसके बाद धीरे-धीरे वह चिंता स्थिर हो आई थी—धू धू करके जले ग्रह के ज्योतिष्मान होने जैसी। उसी जोत मे उन्होने अपने मन के कोने-कोने की खाक छान देखी। कुछ नही पाया। नथिग इम्मोरल, नथिग इल्लिगल। कोई अन्याय नही, कोई पाप नही। बधुत्व। गहरा बधुत्व। सुरमा उनकी अतरगतम मित्र है, इस बात को कबूल करते हैं वह। और भी ठीक से देखा था। न, उससे भी कुछ ज्यादा। सुरमा को पाने की आकाक्षा भी है। है। उसके बाद और भी सजग पर्यवेक्षण किया। नही। पाने की आकाक्षा नही। पाने की आकाक्षा नही है, नही पा सकने के कारण मन में शूल जैसी वेदना की एक धारा बह रही है। बस। वह धारा अपनी बाढ से दोनो तटो को तोड-फोड डालने को तैयार नही, जीवन की गहराई मे चुपचाप आसू का उत्स होकर घुमड ही रही है। आजीवन घुमडती रहेगी।

उन्होंने अपने चिन्तन की उस जोत को न्याय और नीति की विधान लिखी अक्षय शिलालिपि पर फैलाई। अडिग धीरज के साथ जीवन की श्रेष्ठ बुद्धि लगाकर लगभग ध्यानयोग में उन्होंने उस लिपि का पाठोद्धार किया। किसी समाज, किसी राष्ट्र किसी धर्म की व्याख्या नहीं की, किसी व्याकरण की कोई विशेष वस्तु नहीं ली और पाठ खत्म करके निःस्पृह होकर ही वह उस रोज वहां से उठे थे। उस समय चारों ओर गाढ़ा अंधेरा फैल चुका था। दिवालघड़ी उठाकर घड़ी देखी और फिर एक बार आसमान की ओर ताका! इतनी रात हो गई! जनवरी का आरम्भ। रात के पौने दस बज गए! दफ्तर से निकले थे पांच बजे। घर से शायद छ बजे निकले। पौने दस! लगभग चार घंटे सोचते ही रहे। सिगरेट तक न पी। उस समय वे सिगरेट काफी पीते थे। सुर्ती का इस पर भी आसक्ति थी।

[घ]

लेटी थी, न हिल न डुल। अन्त तक वह बोल उठे, मुझे खोजने के लिए
इन लोगो को भेजने की तो कोई जरूरत नही थी।

अबकी सुमति ने जवाब दिया, खोजने कोई नही गया है। क्योंकि
तुम कहा गए हो, इसका अदाज करने मे किसी को कष्ट तो होता नही
है। उन सबको आज मैंने छुट्टी दे दी है। बाजार मे नाटक हो रहा है।
वे लोग वही देखने गए हैं। इसके बाद वह उठ बैठी। कहा, मैंने जान-
कर ही छुट्टी दे दी है। तुमसे निबटारा करना है।

सुमति की दोनों आखें लाल हो उठी थी। देर तक लगातार रोती
ही रही। ममता से उनका अन्तर टन्-टन् कर रहा था। अकृत्रिम गाढे
स्नेह के आवेग से ही उन्होने कहा था—तुम बच्ची-सी हो सुमति। एक
बात क्यो नही समझती हो तुम—

—मैं सब समझती हू। तुम्हारे जैसा पडित नही हू मैं। और अधार्मिक
बाप मा की दुलारी बेटी की तरह लिखने-पढने का ढग भी नही जानती
मैं, लेकिन सब समझती हू।

धीरे ही गले से ज्ञानेन्द्र बाबू ने कहा, नही। नही समझती हो।

—नही समझती हू? तुम सुरमा को प्यार नही करते हो?

—करता हू। मित्र मित्र को जैसे प्यार करता है।

—मित्र, मित्र, मित्र! झूठ, झूठ, झूठ! कहो, ईश्वर की शपथ खाकर
कहो, उसके साथ रहना, तुम्हे जितना अच्छा लगता है, मेरे साथ रहना
उतना अच्छा लगता है?

इसके जवाब मे एक ही बात कहू, जरा धीरता से समझ देखो, तुम्हारा
मेरा साथ जीवन-जीवन, अग-अग मे सैकडो बधनो मे बधा है। तुम्हारी
या मेरी किसी एक की मौत से भी बधन की वह गाठ नही खुलेगी। मैं
पास रहू या दूर, एकान्त तुम्हारा ही हू।

सुमति चीख उठी थी—नही। झूठ है।

उसके बदले में आनन्द और अमृत-परस कहता हू । हा, सुरमा के ससर्ग मे वह मुझे मिलता है । सत्य से मैं इनकार नही कर सकता । लेकिन क्यो मिलता है, कह सकती हो तुम ? और वह तुम क्यो नही दे सकती हो ?

—इसलिए कि तुम गिरे हुए चरित्र के हो । और चूकि तुम गिरे हुए चरित्र के हो, इसीलिए तुम्हे उसके पास आनन्द मिलता है ! शराबी जैसे शराब को आबेहयात कहते हैं ।

—अगर मैं शराबी ही हू सुमति, शराब को ही अगर मैं अमृत समझता हू, तो तुम मुझसे नफरत करो, मुझे छुटकारा दो ।

कठोर व्यग्य के साथ सुमति ने पल ही भर मे जवाब दिया, जैसे कि साप फन का झपट्टा मारता हो—तो बडा मजा आए, न ?

उस डसने से वे छटपटा उठे थे, पर जहर से लुढक नही पडे थे । कुछ क्षण काठ के मारे-से रहकर फिर धीर स्वर मे बोले, सुनो सुमति ! तुम मेरे धीरज के बाध को तोड दे रही हो । तिसपर मैं भूखा हूँ, थका हुआ हू । मैं तुम्हे अपनी अन्तिम बात कह दू । तुमसे मेरा जीवन सामाजिक विधान से जुड गया है । इस विधान के मुताबिक मैं तुम उस बधन को तोड नही सकते हैं । तुम स्त्री हो, मैं तुम्हारा पति । मैं इस प्रतिज्ञा से बधा हू कि मैं तुम्हारा भरण-पोषण करूगा, तुम्हारी रक्षा करूगा, कमाई, अपनी धन-सम्पत्ति तुम्हे दूगा । मेरे घर की तुम घरनी होगी । मेरा शरीर तुम्हारा है । ससार मे जो वस्तु है, जो वास्तव है, जो कुछ भी हाथ उठाकर दिया जा सकता है, वह तुम्हीको देने को मैं वचनबद्ध हू । वह मैंने दिया है, सदा देता रहूगा । जरा भी कभी धोखा नहीं दिया है । कोई अनाचार नही किया है ।

—नही किया है ।

—नही ।

—सुरमा को तुम प्यार नहीं करते हो ? इतने बडे झूठ की कसम

खाकर कह सकते हो तुम ?

—तुम्हारे अधिकार में दखल दिए बिना किसी को प्यार करना अनाचार नहीं है।

—नहीं है ?

—नहीं, नहीं, नहीं। उससे पहले मैं तुमसे पूछूंगा, क्या तुम बता सकती हो प्यार की बनावट कैसी है ? उसे हाथ से छुआ जा सकता है ? उसे क्या हाथ से उठाकर किसी को दिया जा सकता है ? दे सकती हो ? अपना निश्छल प्रेम तुम उठाकर मेरे हाथ में दे सकती हो ?

अबकी सुमति हैरान हुई थी। एक पल वह जवाब नहीं दे सकी। कुछ क्षण चुप रहकर बोली, तुम यह बुझौवल बुझाकर असली बात को दबा देना चाहते हो। मगर दबा नहीं सकते। दबाने नहीं दूंगी।

—बुझौवल नहीं। बुझौवल मैं नहीं बुझाता। असल में मुहब्बत देने की नहीं, लेने की चीज है सुमति। ऐसा सुना जाता है कि कोई किसी को प्यार करके पागल हो गया। देखा जाता है। लेकिन वहां असली महिमा उसकी नहीं जो मुहब्बत करता है, महिमा उसकी है, जिससे प्रेम किया जाता है। आदमी पहले महिमा को मुहब्बत करता है, फिर आदमी को। यह महिमा कहीं रूप की होती है, कहीं गुण की। सुरमा के महिमा है, वह शायद तुम देख नहीं पाती हो, मैं पाता हूं। इसीलिए प्राकृतिक नियम से मैंने उसे प्यार किया है।

—कहते शर्म नहीं आती है ? जबान हिचकती नहीं ? सुमति चिल्ला पड़ी थी।

—नहीं।—वह सख्त गले से बोले, वह आवाज उनकी अपनी नहीं। उनकी आंखें अभी तक सुमति की आंखों पर से हटी नहीं थीं। मिट्टी की ओर गड़ी नहीं थीं। सुमति ही विभ्रांत जैसी हो गई थी। वह विभ्रांति वह कई क्षणों के बाद काट पाई। उसके कटते ही वह चीखकर बोल

उठी—

तुम्हारे होंठ झड़ जाएंगे। यह बात न कहो।

—हजार बार कहूंगा सुमति। चीख चीखकर सबके सामने कहूंगा। होंठ मेरे नहीं झड़ेंगे मैं निर्दोष हूं, निष्पाप।

—निष्पाप ? बेदर्दी के साथ हंस उठी थी सुमति। फिर बोली—धर्म इसका गवाह देगा।

—धर्म ? हंस उठे थे ज्ञानेन्द्रनाथ—धर्म को तुम नहीं जानती, धर्म की दुहाई तुम मत दो। तुम्हारे अविश्वास का धर्म सिर्फ तुम्हारा ही है। मेरा धर्म मनुष्य का धर्म है, जीवन का धर्म है। यह तुम नहीं समझोगी। मत समझो पर इतना जान लो, विवाह के समय जिस शपथ के साथ मैंने तुम्हें अपनाया है, उसके हर कुछ का निष्ठा के साथ पालन किया है। कर रहा हूं। जब तक जिन्दा रहूंगा, करूंगा।

—कर्तव्य। लेकिन मन ?

—उसको तो वह चुका। किसी को दिया, यह कहने से वह दिया नहीं जा सकता। जिसे लेने की शक्ति है, वह लेता है। वहां मनुष्य का कानून नहीं चलता। वह प्रकृति का नियम है। उस वस्तु को लेने की जितनी शक्ति है तुम्हारी, उससे कतरा भर भी ज्यादा नहीं ले सकती। हां, आदमी इतना कर सकता है कि मन के घर के हाहाकार को लोहे के किवाड़ के अन्दर बन्द रख सकता है। वैसा करके भी वह हंस सकता है, कर्तव्य कर सकता है, जी सकता है। मैं वही करूंगा। यों बातें घुमा-घुमाकर तुम मुझे घायल न करो।

सुमति को ढूंढे इस बात का जवाब नहीं मिला। उसने अचानक मेज पर रखी हुई फाईलों को ठेलकर, गिराकर तहस-नहस कर दिया। उसका हाथ थामकर उन्होंने कहा, यह क्या हो रहा है ?

—तसवीर कहां है ?

—तसवीर का क्या होगा ?

—उसे मैं जलाऊंगी।

—नहीं।

—नहीं क्या। मैं जरूर जलाऊंगी।

—नहीं।

—नहीं दोगे ?

—नहीं। उस तसवीर को मैं घर पर नहीं रखूंगा, पर जलाने नहीं दूंगा।

सुमति ने सर पीटना शुरू किया—नहीं दोगे ? नहीं दोगे ?

मेज की दराज से तसवीर की प्रतियां निकालकर ज्ञानेन्द्र बाबू ने फेंक दी थी। सिर्फ तसवीरें ही नहीं, बाल का गुच्छा भरा वह लिफाफा भी। क्रोध से पागल सुमति ने उसे खोलकर नहीं देखा। सब कुछ को उठाकर उसने जलते चूल्हे में डाल दिया था।

उनमें भी अब सहने की शक्ति नहीं थी। खाने की रुचि नहीं रही। सिर्फ सब कुछ को भुला देना चाहा। आलमारी खोलकर उन्होंने ब्रांडी की बोतल निकाली। उस समय पीना शुरू कर चुके थे। नियमित रूप से। थोड़ी थोड़ी। थकावट दूर करने के लिए। उस दिन काफी पीकर बिस्तरे पर लुढ़क पड़े थे।

सुमति के भीतर की आग उस समय बाहर आ रही थी। पागल हो रही थी वह। वहां उन कुछ तसवीरों को ही चूल्हे की भेंट चढ़ाकर वह बाज नहीं आई, सुरमा की और भी कई तसवीरें थीं, एक तो उसने खुद ही सुरमा से मांगकर ली थी। कई सुरमा ने अपनेपन से दिया था, उन सबको उतार कर, पटक करके उनका कांच तोड़कर सब को चूल्हे में डाल दिया था। उनके साथ-साथ सुरमा की चिट्ठियां भी डाल दी थीं। फूंककर आग को सुलगाकर ही वह आकर लेट गई। दो घण्टे के बाद

वही आग छप्पर में लग गई थी। सुमति के भीतर की आग। प्रकृति का अमोघ नियम है। वनस्पति की डाल-डाल पर, पत्ते-पत्ते पर, फूल-फूल पर जो तेज-शक्ति सृष्टि का उत्सव रचाती है, वही तेज-शक्ति आपसी घर्षण के जरिए आग बनकर पहले सूखे पत्ते को लगती है, उसके बाद वनस्पति को लगती है और फिर सारे जगल को खाक किए डालती है।

ज्ञानेन्द्र बाबू ने दीर्घ निश्वास फेंका। जलकर खाक होने के बाद भी सुमति ने छुटकारा नहीं दिया।

बाहर टन्-टन् करके दो का घण्टा बजा। कॉफी का प्याला उनके हाथ में ही था। उतार कर रखना भूल गए थे। अब उसे रखा।

अरदली आया। वह इजलास में जाने वाले दरवाजे का परदा उठाकर खड़ा हो गया। जूरी, वकील पहले ही आकर अपनी-अपनी जगह पर बैठ चुके थे। अदालत के बाहर गवाह की पुकार शुरू हो चुकी थी।

ज्ञानेन्द्रनाथ अपने आसन पर आ बैठे। हाथ में पेंसिल उठा ली। खुले दरवाजे से उन्होंने बाहरी अहाते में अपनी नजर फैला दी। मन गहराई में गहराई में डूब गया। वहां न सुरमा थी, न सुमति — शायद यह दुनिया ही नहीं थी — वहां सिर्फ एक सवाल था, जो उस मुजरिम ने किया था। सेशन्स में आमतौर में यह सवाल इस रूप में आकर नहीं खड़ा होता। वहां सवाल मुजरिम के बारे में रहता है। मुजरिम की ओर देखा उन्होंने। चौंक उठे। मुजरिम के पीछे वह क्या है? कौन? — नहीं—! कोई नहीं। छाया पड़ी है। रोशनदान से छनकर जरा तिर्यक ढंग से मुजरिम पर आकर रोशनी पड़ी है। उसके पीछे की ओर एक छाया पड़ी है। ठीक जैसे कोई खड़ा हो!

पहला गवाह आकर कठघरे में खड़ा हुआ। छान-बीन करनेवाला

पुलिस कर्मचारी। हलफ उठाकर वह खगेन के मरने की खबर पहले-पहले पाने की, थाने की डायरी मे दर्ज करने की बात कह गया। मुजरिम नगेन ही खबर लिए आया था। ज्ञानेन्द्र बाबू ने फिर मुजरिम का ओर ताका। मुजरिम के पीछे की छाया लम्बी होकर दीवाल पर पड़ी थी। बरसाती दिन के अपराह्न की जोत अब पश्चिम की खिड़की से आकर बिखर गई। दरोगा की गवाही खत्म हुई।

घड़ी म टन-टन् करके चार बजे। ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा, कल जिरह होगी। उठ पड़े वह। आ॰। फिर भी उनका आच्छन्न हुआ जैसा भाव जा नही रहा था।

छः

ज्ञानेन्द्रनाथ लौट आए। बिलकुल खोई-खोई हालत में। दो दिन के बाद। मुकदमे का अन्तिम दिन। सब कुछ खत्म करके घर लौटे। मसार ब। सारा कुछ उनकी दृष्टि, मन, चेतना से हट गया था। कुछ भी नही। आंखों में थिरक रही थी मुजरिम की शक्ल। कानों में गूंज रही थी दोनों ओर के वकीलों की दलीलें। मन में थी सारी घटनाओं के विवरण से तैयार की हुई तसवीर। और, उनकी चेतना को ढके हुई थी मुजरिम की बातें।

थाना से लेकर दौरा अदालत तक, तमाम वह यही एक बात कहता आया, 'हुजूर, मैं नही जानता कि मैं दोषी हूं या निर्दोष। भगवान जानते हैं और हुजूर विचार करके कहेंगे।' और ये बातें मानो महज बातें ही न थी। बातों से जैसे कुछ ज्यादा। जवाब में उसने बड़ा टेढ़ा सवाल पेश किया है। गले से उसकी करुण वेदना अभिव्यक्ति, निगाहों की वह विवश विह्वलता, हाथ जोड़कर विनती का वह निश्छल ढंग—कुल मिलाकर इन सबने उनकी चेतना पर अजीब एक प्रभाव डाला था। 'मैंने कसूर नहीं किया है।' इतना ही कहकर उसने खत्म नहीं किया प्रश्न किया—

विचारक तुम बताओ ! वैसा ही प्रश्न, जैसा युगों से आदमी ईश्वर से करता आया है।

इस प्रश्न ने उनकी सारी चेतना को मानो चौंका दिया है। नींद की हालत में आंखों पर रोशनी की तेज छटा और उसकी आंच के स्पर्श से आदमी जगकर जैसे विह्वल हो पड़ता है, वैसे ही विह्वल हो पड़े वह। इस आदमी के उस आखिरी संकट की घड़ी की अवस्था की कल्पना करनी होगी। जमीन पर खुली हवा में रहने वाला जीव छेदहीन, दम घुटाने वाले पानी में डूबकर पल-पल किस हालत में, कहां जा खड़ा हुआ था, इसका अनुमान करना होगा। मौत के सामने तरंगहीन, सीमाहीन एक घने काले परदे ने पल-पल उसे घेर लिया था। एक भीषण भय, बेहिसाब पीड़ा आज के मनुष्य को, हजारों-हजार साल के इतिहास के सभ्य आदमी को प्रागैतिहासिक, जंगली, आदिम मनुष्य की पाशव चेतना के युग में ढकेलती हुई ले गई थी। वहां दया नहीं, माया नहीं, स्नेह नहीं, ममता नहीं, कर्तव्य नहीं, है सिर्फ आदिमतम प्रेरणा लिए प्राण, जीवन।

कल्पना वह कर रहे थे। कल्पना नहीं, ठीक इस भयंकर स्थिति में उनके मन में प्रत्यक्ष अनुभव की याद जग आई थी। वह अनुभव कर पा रहे थे।

[ख]

अकस्मात दम घोटने वाली एक कठोर पीड़ा। जिसने तो मानो कठिन कठोर हाथ की मुट्ठी में हृदय के पिंड को धर दबाया था। उसके साथ ही साथ दिमाग में एक जकड़न। जागते-जागते नींद खुल गई थी। पीड़ा के मारे आतंक-विस्फारित आंखें फैलाकर भी वह कुछ समझ नहीं

सके। पुंज पुंज किसी सादी-सी चीज ने मानो उन्हें ढक-सा लिया। और एक बू। और पुंज-पुंज उस सादे-से परदे को दमकाती हुई एक छटा।

धुआं! लमहे में समझ में आ गया, आग है। घर में आग लगी है। घर के ऊपर का सारा छप्पर जल रहा है। जनवरी के अखीर की सरदी। घर के किवाड़-झरोखे सब बन्द। धुएं से सारा घर जहर की भाप से घिरी आदिम धरती की तरह डरावनी हो उठी थी। घर की रोशनी गुल हो गई। आग की छटा से रंगा हुआ धुआं ही धुआं। उसमें आंच कितनी! उनके अपने दिमाग में उस समय शराब का नशा था, पीड़ा थी। उनको और सुमति को मौत मानो आग के मुंह में लीलने आ रही हो। सुमति फर्श पर सोई थी। वह तब तक जग गई थी, लेकिन डर में घबराई हुई आंखों के कोटरों से आंखें दोनों निकला चाह रही थीं जैसे। एक चीख, सिर्फ चीख।

उस स्थिति में भी अपने को सभालकर हिम्मत बटोरकर वह खड़े थे। धुएं से सब ढकता आ रहा था, आंखों से पानी चल रहा था। उसी हालत में जाकर उन्होंने सुमति का हाथ पकड़ा। कहा, चलो, जल्दी चलो।

सुमति ने उनके हाथ को कसकर पकड़ लिया था।

किवाड़ कहां है? किधर?

उस रोज सुमति दरवाजे की जंजीर तथा ऊपर-नीचे की छिटकिनी लगाकर सोई थी। कि इतना सब खोलते-खोलते उसकी नींद खुल जाएगी। उन्हें पता था, उसे इस बात का खौफ था कि रात को कहीं चुपचाप निकल जाएं!

फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। अपनी दिशा और संयम के सहारे जी-जान से उन्होंने अपने आप को स्थिर रखा था। एक-एक करके छिटकिनी और जंजीर खोली। बाहर बरामदे पर निकल आए। वहां सांस लेने की सहूलियत तो हुई, पर इसी बीच बरामदे का सारा

छप्पर जलकर नीचे आ रहा था। एक तरफ का हिस्सा गिर चुका था, बाकी गिर रहा था। जलती आग की एक परत सी सिर के ऊपर गिरती आ रही थी। ऐन वक्त पर सुमति चीख पड़ी और जैसे कोई भारी बोझा गिरता हो, मुह थोंमकर पेट के बल गिर पड़ी। उसके खिंचाव से वह भी गिर पड़े। और उन पर गिर पड़ी छप्पर की टाट के साथ-साथ जलती हुई फूस की ढेरी। उफ़, कैसी जलन! एक विशाल अग्निकुण्ड में सारा विश्व-ब्रह्माण्ड विलुप्त हो गया। इतने पर भी उन्होंने खड़े होने की कोशिश की। लेकिन रुकावट पड़ी। उनका हाथ कहीं अटक गया था? ओह, सुमति ने पकड़ रखा था! कि लमहे में अपना हाथ छुड़ाकर ऊपर से उछलकर वह किसी तरह खुले आंगन में पहुंच गए थे। इसलिए स्थिति को वह समझ गए। वह स्थिति कल्पना करने की नहीं। चूंकि वह भुक्त-भोगी थे, इसलिए समझ सके।

"ईश्वर जानते हैं और हुजूर विचार करके कहेंगे।" मुजरिम के ये शब्द अभी भी उनकी चेतना को दबते हुए कानों में गूंज रहे थे।

बचाव पक्ष के वकील ने भी आत्मरक्षा के अधिकार को ही महत्त्व देते हुए उस पर बल दिया। जीवन का जन्मजात पहला अधिकार, अपने जीने का अधिकार सबसे पहले। इस हक का अधिकारी होकर वह जन्म लेता है। दण्ड संहिता की धारा इक्यासी का नजीर दिया। उन्होंने एक दर्दी उमाग की। बेचारा मुजरिम! धारा इक्यासी ने उसे डूबने की हालत में भी गला दबाने का अधिकार नहीं दिया। मुजरिम के वकील ने बेहद बड़ी चतुराई से और अपनी ज़रूरत भर का अंश ही जूरियों के सामने रखा।

"'ए' ऍण्ड 'बी', स्वीमिंग इन दि सी आफ्टर ए शिपरैक, गेट होल्ड ऑफ ए प्लैंक नॉट लार्ज इनफ टु सपोर्ट बोथ, 'ए' पुशेज 'बी', हु इज ड्राउण्ड। दिस इन दि ओपिनियन ऑफ सर जेम्स स्टीफेन, इज नॉट ए

क्राइम…"

लेकिन इसके ऊपर भी तो थोड़ा सा है। सर जेम्स स्टीफेन ने और भी कहा है।

"'ऐज़ देयरबाइ 'ए' इज़ 'बी' नो डाइरेक्ट बॉडिली हार्म बट सीज़ हिम टु हिज़ चास ऑफ़ एनादर प्लेस।"

यह धारा तो उनके मन में चमकते हुए अक्षरों में गुदी हुई है।

क्योंकि इसी विधान से बार-बार कसौटी करके उन्होंने अपने आपको छुटकारा दिया है।

उन्होंने सुमति के हाथ से महज़ अपना हाथ ही छुड़ाया था, उसपर किसी तरह की चोट नहीं की थी। चोट करके हाथ छुड़ाना अपराध होता। हाँ, सुमति के शरीर में एक ज़ख्म था, वह ज़ख्म किसी के द्वारा किया हुआ नहीं था, वह सुमति पर नियति का परिहास था, वह उसके कर्म का फल था—उसके तलवे में एक लम्बा-सा काँच का टुकड़ा चुभा हुआ था। जिन कुछ तसवीरों को स्वयं उसने पटककर तोड़ डाला था, उसीके टूटे काँच का एक टुकड़ा। उसी के चुभ जाने से ही वह सकट की उस घड़ी में एकाएक गिर पड़ी थी।

विधना का लिखा! उसी लिखावट के समान एक अजीब ढंग से सुमति ने अपने हाथों एक अनिवार्य परिणाम तैयार किया था। छुटकारे का कोई रास्ता ही खुला नहीं रखा था। अपने ही हाथों उसे छेदविहीन करके बन्द कर दिया था। जीवन-प्रकृति और जड़-प्रकृति एकमात्र अगर दोनों ही ज़िगद खड़े हो तो फिर कैफ़ियत नहीं। उस दिन उनके जीवन में ऐसा एक परिणाम अनिवार्य ही था। सुमति के अपने हाथों सुलगाई हुई आग अगर घर में नहीं लगती तो और ही तरह से यह नतीजा सामने आता। वह खुद खुदकुशी करते। वह यह सोचकर ही सोए थे कि सुमति जब गाढ़ी नींद में सो जाएगी, तो वह आत्महत्या करेंगे।

लेकिन नशा ज्यादा हो जाने से होश के साथ साथ उनका मरना भी धीमा पड गया था। इस बात में उन्हें सन्देह नहीं था कि उनके आत्म-हत्या करने में सुमति भी आत्महत्या कर लेती। काया से जैसे छाया लगी होती है, वह उनके जीवन को जकड़कर पकड़ हुई थी।

[ग]

कमरे में गए। कमरे के बीच में खड़े होकर चारों तरफ देखा। कमरा धुंधला अन्धेरा-सा था। उनकी अपनी छाह भी गायब थी। आगे बढ़े। सामने की दीवार पर परदे से ढकी जो तसवीर टगी थी, उसपर से परदे को खींच दिया।

सुमति का तैलचित्र उस धुंधलके में साफ दिखाई नहीं पड रहा था, सिर्फ उसकी बड़ी-बड़ी सफेद आखें चमक रही थीं।

तसवीर की तरफ अपलक ताकते हुए खड़े रहे।

कोई शिकवा कर रही है वह ?

वह क्या दुर्बल हुए जा रहे हैं ?

— तुम इस कमरे में ?—बाहर से कहती हुई कमरे में आकर पति को सुमति की तसवीर की तरफ ताकते देख सुरमा स्तब्ध रह गई।

—उधर की खिड़की खोल दो तो ?

—खोल दू ?

— हां।

सुरमा इस बात को उठा नहीं सकी। खिड़की खोलते ही तसवीर पर रोशनी की छटा आकर पड़ी।

सुरमा सिहर उठी। तुरत आगे बढ़ी कि तसवीर पर फिर से परदा डाल दें।

—नहीं। मत ढको इसे।

—क्यों ? यह अचानक तुम्हें हो क्या गया ?

सुरमा के चेहरे की तरफ ताकते हुए ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा, उसी दिन से बीच-बीच में इसकी याद आ रही है बीच बीच में आकर सामने खड़ी हो जाती है। आज बहुत बार खड़ी हुई। इसीलिए मैं ही उसके सामने आकर खड़ा हो गया। रहने दो, इसे खुला रहने दो।

—रहने दो। लेकिन कपड़े बदल लो, चलो। चाय पियो।

—यही चाय भेज दो। कपड़े अभी नही बदलूगा। अपनी नीद को सुरमा ने मन ही मन कोसा। सो गई थी, नही तो गाड़ी से उतरते वक्त ही ज्ञानेन्द्रनाथ को मोड सकती थी। इस कमरे मे नही जाने देती।

आज कई दिनो से पति के लिए उनकी चिंता का अन्त नही था। दिन दिन मानो वह दूर से दूर चले जा रहे हैं, किसी निर्जन गहन के मौन एकाकीपन मे डूबते चले जा रहे हैं। बरसात के दिगतव्यापी वर्षणोन्मुख मेघो की तरह वह गम्भीर, म्लान और भारी हो उठी। जीवन की जोत मानो किसी विराट और गहरे प्रश्न के अनिवार्य आविर्भाव से ढक गई। अवश्य ज्ञानेन्द्रनाथ के लिए यह कुछ नया नही। ऋतु-परिवर्तन की तरह यह उनके जीवन मे बार बार आया किया है। इस आदमी के जीवन मे बार-बार कितने परिवर्तन हुए। ओ।

लेकिन ऐसा खोया हुआ भाव, मौन मे ऐसे डूब जाना—यह कभी नही देखा! सबसे ज्यादा डर उन्हें सुमति की तसवीर से हुई। वह कौन-सा खयाल लेकर आई? क्या प्रश्न? वह प्रश्न चाहे जो भी हो, उससे यह जुड़े हुए हैं, इसमे तो सदेह नही। उनका मन इस बात की झलक पा रहा है। अकुला उठा है। उनकी मा ने उन्हे मना किया था। मानो मे गूज रहा है। याद आ रहा है। खुद भी दूर खिसक जाना चाहता है। टेनिस-चाइनल जीतने के बाद वाली तसवीरो को पाने के बाद ही तय कर लिया था सुमति-ज्ञानेन्द्रनाथ के बीच से वह हट जाएगी। बहुत दूर हट जाएगी। दूसरे ही दिन सबेरे कलकत्ते चली जाएगी, वहा से अपने पिता-जी को बदली कराने की या ज्ञानेन्द्रनाथ की बदली कर देने की लिखेगी पिता को यमान मे सकोच नहीं था। लेकिन अजीब घटना घटी!

दूसरे दिन सबेरे ही सुना, मुंसिफ साहब का बगला जलकर राख हो गया। उनकी स्त्री जलकर मर गई, मुंसिफ साहब खुद अस्पताल मे बेहोश पड़े हैं। उनकी छाती, पीठ—सारी जल गई है। पता नही, जिएगे भी

या नहीं ?

उनका सब बाँध ही टूट गया था।

जिस प्रेम को जीवन में जाहिर न करने का संकल्प किया था उन्होंने, संकट की घड़ी में वही प्रेम जोरों से रोकर जाहिर हो पड़ा। वह ज्ञानेन्द्रनाथ के सिरहाने जा बैठी। नहीं उठूँगी वहाँ से, नहीं उठूँगी। माँ से कहा, मुझे यहाँ से उठने मत कहना, मैं नहीं जाऊँगी। नहीं जा सकूँगी।

कातर दृष्टि से पिता की ओर निहारा था। पिता ने कहा, ठीक है। रहो।

माँ ने कहा, यह तू कर क्या रही है, सो सोच ले। जो आदमी अपनी स्त्री को बचाने के लिए जान को इस तरह से खतरे में डाल सकता है, उसके मन में दूसरे के लिए जगह कहाँ ?

लोगों ने देखा था, चकित होकर देखा था, सुमति का हाथ पकड़कर ज्ञानेन्द्रनाथ को निकालते। छप्पर के नीचे दब जाने के समय सुमति का नाम लेकर उनकी वह आर्त्त पुकार सुनी थी—सुमति ! कैसी दिल दहलाने वाली पुकार ?

ज्ञानेन्द्रनाथ जब चंगे हो उठे, तो एक दिन अकेले में सुरमा ने कहा, मैंने तुम्हारे जीवन को चौपट कर दिया। मेरे ही लिए तुम्हारी ऐसी बरबादी हुई। तुम मुझे स्वीकार करो। मैं सुमति की कमी ··

ज्ञानेन्द्रनाथ भी गजब के। सुरमा की बात पर टोककर बोले—कमी महसूस करने की जगह को ही आग की जीभ से चाटकर उसका रूप, रस, गंध, स्वाद—सब कुछ ले गई सुरमा।

उन्होंने उँगली से अपनी पीठ और छाती दिखाई थी।

—मेरी चाय, सिर्फ चाय, यहाँ भेज दो। प्लीज़।

ज्ञानेन्द्रनाथ का गला धीमा और गम्भीर था। सुरमा चौंक उठी। कठोर वास्तविकता में लौट आई। ज्ञानेन्द्रनाथ सुमति के तैलचित्र के

सामने खड़े है।

—नही। करुण विनती के साथ सुरमा उनका हाथ पकड़ने गई।

—प्लीज !

सुरमा का बढ़ता हुआ हाथ आप ही दुर्बल होकर उतर आया। आदेश नही, आरज़ू। विद्रोह करने का चारा नही था। टाला भी नही जा सकता।

सुरमा चुपचाप वहा से चली गई।

सात

ज्ञानेन्द्रनाथ एकटक तसवीर की ओर देख रहे थे। भाषा का, जीवन्त स्पंदन भी हो, तो उसे सुनने की कोशिश कर रहे थे, कोई इशारा हो तो समझने की कोशिश कर रहे थे। सुमति की इस मीठी, कोमल प्रतिकृति में असंतोष की, शिकायत की छाया कहां है?

—तुम आज इजलास में अस्वस्थ हो गए थे?

ज्ञानेन्द्रनाथ ने पलटकर देखा।

सुरमा चाय लिए खड़ी थी। खुद ही ले आई थी—बैरा को साथ नहीं लाया था।

—किसने कहा?

—अरदली ने कहा। पब्लिक प्रासीक्यूटर के सवाल करते समय तुम्हारा सर चकरा गया था। उठकर तुमने चैंबर में जाकर सर धोया?

—हां। ज्ञानेन्द्रनाथ जरा हंसे। अजीब थी वह हंसी। उदासी में भी ऐसी प्रसन्नता रह सकती है यह सुरमा ने कभी नहीं देखा।

अचानक ही अस्वस्थ हो गए थे वह।

पब्लिक प्राजीक्यूटर मुजरिम के वकील के सवालों का जवाब दे रहे थे। वह अपने मे डूबे हुए थे। पत्थर की मूरत की तरह बैठे थे, आखों की पुतलिया तक स्थिर थी। वे काच जैसी लग रही थी। बिजली के पखे की हवा मे उनके गाउन के किनारे काप रहे थे, हिल रहे थे। मन ही मन वह दम घुटनेवाली उस स्थिति का अनुभव कर रहे थे। आर्थिक नियम से अन्धी वस्तु शक्ति का पीडन। हिसाब के नियमानुसार एक ओर उसकी शक्ति घनी होती है, दूसरी ओर जीवन की जूझने की शक्ति, सहने की शक्ति क्षीण से क्षीणतर होती जाती है। उसकी अन्तिम घडी के ऐन पहले, वह चरम घडी, आखिरी कोशिश, धुआ और धुआ—प्राण देने वाली स्वच्छ हवा के बिना छाती फटी जा रही है। सारी यादें, धारणाए, विचार बुद्धि—धुधली होकर खो जाने लगी। हवा के अचानक बन्द हो जाने से लालटेन की लौ बढकर जैसे काच पर कालिख चढा देती है, उसकी जोत की चेतना को ढककर आप भी बुझ जाती है—ठीक वही। ठीक उसी समय जलती फूस की ढेर गिर पडी—एक साथ सैकडो बन्धन से बधी ठोस एव आग की दीवार जैसी। मुजरिम ने ठीक ही कहा, उस समय मन की क्या हालत थी, याद नही की जा सकती। प्रकृति का नियम। अभागा मुजरिम पानी म डूब रहा था। ई न उसे सख्त बन्धन मे बाध लिया था। वह पानी के अनत तल म उतरता जा रहा था, साम रुधकर छाती फटी जा रही थी—उसी पीडा मे वह पीछे की ओर लौट रहा था, आदिम जीवन की चेतना की ओर—। कि उनके कानो अविनाश बाबू की बात पहुची।

[ख]

पब्लिक प्राजीक्यूटर इक्यासिवीं धारा मे उल्लिखित अंश की कह रहे थे। मुजरिम ने खगेन का गला दबोचकर उसे मारा, दम घोटकर उसे मारा, खगेन को मारकर उसने जान बचाई, खगेन को बचने का मौका नहीं दिया।

"योर आनर, इसमें सिवा भी एक बात है। मेरे विद्वान मित्र ने नेकशन एट्टी वन के अंश मात्र का ही जिक्र किया है। उस अंश की बात मैंने कही है। उसी इक्यासी धारा की और एक नजीर मैं पेश करूं। एक टूटी नाव के तीन नाविक डोंगी पर अपार समंदर में बह रहे थे। दो जने प्रौढ़, एक किशोर। अपार-अथाह समंदर, तिसपर भूख। भूख वही भयंकर रूप लेकर सामने खड़ी हुई, जिस रूप को हम आदिम उन्मादिनी शक्ति समझते हैं। 'या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।' जिसके आगे सारा विश्व ब्रह्माण्ड सिर झुकाता है। उस हालत में उन लोगों ने लाटरी लगाई और उस किशोर को मारकर उसके मांस से जान बचाई। वे बच गए। बाद में उनका विचार हुआ। उस विचार के क्रम में मुजरिमों के वकील ने उस आदिम कानून की बात का जिक्र करते हुए कहा था, 'विचारक को इस बात का ख्याल रखना होगा कि उस समय के मानवी सभ्यता के कानून से भी बड़े कानून द्वारा परिचालित थे।'

"किंतु जहां विचारक कहते हैं, आत्मरक्षा जैसी सहज प्रवृत्ति है, साधारण धर्म है— आत्मत्याग, दूसरे के लिए जान देना भी मनुष्य की वैसी ही सहजात प्रवृत्ति है, महत्तर धर्म है। योर आनर, जो प्रकृति वस्तु-जगत में अन्धे नियमों से चलती है, जन्तु-जीवन में बर्बर है, हिंसक और कुटिल है, आत्म-परतन्त्रता में जो प्रकट होती है—मनुष्य के जीवन में उसीका स्वरूप दयाधर्म में, प्रेमधर्म में, आत्मा की महत् एवं विचित्र

प्रेरणा से है। जानवर की मां अपने बच्चे को खाती है। आदमी की मां साँप के मुंह से बच्चे को बचाने के लिए उसका डसना अपनी छाती बिछाकर रोक लेती है। आत्मरक्षा की उसकी वह पाशविक दीनता-हीनता कहां रहती है? मां अगर अपनी जान के लिए बच्चे को मौत के घाट उतारे, बाप यदि अपने प्राण के लिए बेटे की हत्या करे, बड़ा भाई अगर अपने कमजोर बेबस भाई को मारकर अपनी जान बचाने के लिए महत्तर मानव-धर्म को जलांजलि दे, बलवान यदि कमजोर की रक्षा न करे तो फिर मनुष्य और पशु के समाज में भेद क्या रह जाता है? आदि-युग से इस घटना तक मनुष्य का समाज बहुत दिनों से बड़ी दूर चलकर अन्धेरे से प्रकाश भरे पथ पर आया है, यह धर्म, यह प्रवृत्ति आज अब साधारण आदेश नहीं, यह धर्म, यह प्रवृत्ति आज धमनियों के रक्त-प्रवाह में घुलमिल गई है, उसकी प्रकृति के धर्म का अङ्ग बन गई है। हमारे

किन उससे होता क्या ?

आज मुजरिम को लक्ष्य करके अविनाश बाबू ने जब ये बातें कहीं,
ो उनकी एड़ी-चोटी, शिरा-शिरा, स्नायु-स्नायु में सुई की नोक जैसे
ूमानी-स्पर्श की प्रतिक्रिया से मानो एक अजीब कपकपी दौड़ गई। आज
ासमान में बदली नहीं, धूप उगी है। रोशनदान के अन्दर से उस रोशनी
 पड़ने से मुजरिम के पैरों के पास पुंजीभूत होकर जैसे एक घनी छाया
ैठी हो। मेज़ पर सर टेककर वह मानो झुक पड़े थे। पर सिर्फ़ एक
मनट के लिए, शायद उससे भी कम समय के लिए। और तुरन्त सर
ठाकर उन्होंने कहा था, मिस्टर मित्रा, ज़रा देर रुकिए। मैं अभी आया।
ाइव मिनिट्स प्लीज़।

वह खास कमरे में गए। नल के नीचे सर रखकर नल को खोल
दिया था। चार ही मिनट के बाद फिर अपने आसन पर आ बैठे। कहा,
ेस्। गो आन प्लीज़।

'धर्म के बारे में मनुष्य की कल्पना की कहानियां जितनी ही अवास्तव
ों चाहे, उनके अन्दर की उपलब्धि, उनकी बुनियाद का सत्य भ्रान्तिहीन
ै, अमोघ है। राष्ट्र समाज उसी नियम और नीति की सीख देता है।
इस मामले में ···"

अविनाश बाबू ने गजब की धीमता के साथ अपना सवाल रखा।
सारी अदालत अभिभूत हो गई थी। सवाल खत्म होने के बाद भी एक
मिनट तक स्तब्धता थमथम करती रही कि सुई के गिरने तक की आवाज़
सुनी जा सके।

मुजरिम आंखें बन्द किए चुप खड़ा था।

उस सन्नाटे में भी सबके मन में यह गूंज रहा था,—इस मामले में

मुजरिम अगर एक औरत की मुहब्बत में पागल होकर स्नेह-ममता, अपने इतने दिनों के सन्यास-धर्म को विसर्जन देने पर आमादा न होता, तो मैं निश्चित रूप से यह कह सकता हू, कि उस बेचैनी में भी वह अपने छोटे भाई का गला पकड़कर भी छोड़ देता, उसे बचाने की कोशिश करता। उस हालत में यदि ऐसा भी होता तो मैं कहता कि पानी में जब उसने छोटे भाई का गला थमकर पकड़ा था, तो सिर्फ पाशविक आत्मरक्षा की प्रेरणा से ही उसने ऐसा किया था। लेकिन मौजूदा मामले में मुजरिम और मारा गया आदमी भाई होते हुए भी प्रेम के प्रतिद्वन्द्वी थे—जिस द्वन्द्व की उग्रता से जायदाद के बटवारे पर उतारू हुए थे। इस स्थिति में अपने प्रेम के प्रतिद्वन्द्वी के प्रति उसका आक्रोश हर घड़ी मौजूद था और जब सुयोग मिल गया, तो उस आक्रोश ने अपना ठीक ही काम किया। बचपन में चौताया मारने की कुशलता ने मिनटों में इस काम को पूरा कर दिया—योर आनर—

अविनाश बाबू की ये बातें अभी भी गूज रही थीं—कानून ही अन्तिम बात नहीं। दुनिया में प्रकृति का नियम जैसा अमोघ होता है, मनुष्य की चेतना की महत् प्रेरणा भी वैसी ही अमोघ होती है। बल्कि यह उससे भी बलवती होती है, तेज-शक्ति से प्रदीप्त, पाशविक प्रवृत्ति की तमसा को नाश करने के लिए ही उसकी सृष्टि हुई है। भाई ने भाई की, बड़े भाई ने छोटे भाई की जान बचाने की कोशिश नहीं की, बल्कि अपनी जान बचाने के लिए उसका काम तमाम कर दिया। यह हत्या कलंक है, मनुष्य के समाज में यह बुरा से बुरा पाप है।

[ग]

जूरियों ने एक मन होकर मुजरिम को कसूरवार करार दिया।

मुजरिम भी शायद अविनाश बाबू के भाषण से अभिभूत हो गया था, या फिर उसका मन ही अजीब था। उसकी आंखों से आंसू बह निकला था। अचानक कठघरे पर सर टिकाकर वह फूट-फूटकर रोने लगा।

उसकी ओर ताकने का उस समय उन्हें अवकाश नहीं था। उस समय अपनी नजर सामने की तरफ फैलाए उन्होंने अपना फैसला सुनाया—

जूरियों की राय मैंने मान ली और मुजरिम के कसूर के बारे में निष्कर्ष पर पहुंचकर—

वह फिर पल भर के लिए चुप हो गए थे। उनकी आंखें एकाएक सामने की दीवार पर जा पड़ी थीं—मुजरिम की वह परछाईं आधी फर्श पर, आधी दीवार पर टेढ़ी-मेढ़ी होती हुई एक काले प्रश्न-चिह्न की तरह खड़ी थी। लेकिन लमहे में ही अपने को संभाल लिया उन्होंने।

राय सुनाई। आजीवन कारावास। ट्रान्सपोर्टेशन फॉर लाइफ। साथ ही विशेष धारा के अनुसार इस अस्वाभाविक मुजरिम की उस भयंकर अवस्था की घटनाओं के मंथन का उल्लेख करते हुए राष्ट्रपति की दया पाने के विचार की सिफारिश की।

कचहरी से सीधे घर आए। अपने आफिस के कमरे में बैठ गए। दीवार पर का वह प्रश्न चिह्न कल धुंधला था, आज गाढ़ी स्याही से साफ लिखा था।

गुमनि के प्रति मेरा अपराध है? है? है? नहीं है तो तसवीर क्यों रहती है? क्यों? क्यों?

बड़े दिनों के बाद आज उन्होंने भागे हुए, छिपनेवाले की असह्य स्थिति का अनुभव किया।

इसीलिए शीशे पर आए और सुमति की तसवीर के सामने उसका दस्त पकड़कर खड़े हो गए। अपनी शिकायत कहो? मेरा डर कहा है? बोलो! बोलो! बोलो!

चाय के प्याले में चुसकी लेकर ज्ञानेन्द्रनाथ ने एक लम्बा निश्वास छोड़ा। उसी से उनके चेहरे की वह विचित्र, एक ही साथ उदास और प्रसन्न हंसी खो गई। उनकी छाती पर हाथ रखकर सुरमा ने गाढ़े स्नेह के साथ कहा, डॉक्टर को बुलाऊं?

—नहीं।

—अगर भूत जाने की बात मानते हो, और तो भी डॉक्टर को बुलाने में ना करते हो?

—हां। तबीयत मेरी खराब नहीं हुई है। तुम जानती हो कि मैं झूठ नहीं बोलता। वह सुमति, वही सहसा मेरे सामने आकर खड़ी हो गई थी। मेरा सर चकरा गया।

चाय के प्याले को मेज पर रखकर ज्ञानेन्द्रनाथ सर झुकाए कमरे में टहलने लगे। सुरमा मिट्टी के पुतले की तरह ही मेज के कोने पर केहुनी टेककर खड़ी रही।

कि एक समय ज्ञानेन्द्रनाथ को ख्याल हो आया, सुरमा अभी भी कमरे में है। बोले, अभी भी खड़ी हो? नहीं। खड़ी मत रहो। जाओ। खुली हवा में बाहर जाओ। आज भर के लिए छुट्टी दो मुझे। आज भर के लिए।

मामूली स्त्री होती तो अपनी रुलाई को जब्त करती हुई सुरमा दौड़कर वहा से निकल जाती। लेकिन वह अरविंद चटर्जी की लड़की ज्ञानेन्द्रनाथ की स्त्री थी। चुपचाप, धीर चाल से ही बाहर निकली। लान में

जाकर अहाते की कम ऊंची चहारदीवारी से टिककर पश्चिम में डूबते हुए सूरज की ओर ताकती हुई खड़ी हो गई—सूरज को साक्षी रखकर आंसू की दो चुपचुप धाराएं बहने लगीं। उनके जीवन की रोशनी भी क्या उस सूरज के साथ ही डूब जाएगी ? सदा के लिए डूब जाएगी ?

—कौन !—ज्ञानेन्द्रनाथ का गला सुनाई पड़ा।

[घ]

ज्ञानेन्द्रनाथ लगातार टहल ही रहे थे। उनके मन में अजीब ढंग से कुछ बातें चक्कर काट रही थीं।

माण्डव्य ने धर्म के विधान में परिवर्तन किया था।

पशु पशु को मारता है। सिर्फ हिंसा के नाते अकारण ही मारता है, यह उसका धर्म है। तामसी उसके धर्म की अधिष्ठात्री देवी है। मनुष्य ने जिस धर्म का आविष्कार किया है, वह वहां भावों के पेट में है—वह वह पैदा नहीं हुआ, वहां किसी देवता को दण्ड देने का अधिकार नहीं यहां तक कि अनुताप की चोट से भी तर्क अनुशोचना के जगने का अ पराध नहीं है। तमसा में चेतना की रोशनी सबसे पहले आदमी के जीवन में जगी है। शैशव, बाल्यावस्था को पार करके उस चेत नता पहुंचने की पहले की घड़ी तक वह सारे नियमों से परे है। मांड ने कहा था—यम, उस अमोघ सत्य के अनुसार मैं तुम्हारे विधान संशोधन करता हूं। पांच साल की आयु तक आदमी अपराध और द परे है।

धर्म ने कदाचित् वह विधान मान लिया था।

आधुनिक युग में आदमी ने उस विधान का फिर संशोधन किय

राष्ट्रीय दंड विधि का निर्देश है, सात साल तक मनुष्य में अपराध का बोध नहीं आता। लिहाजा उतने दिनों तक वह दंड विधान के बाहर है। राष्ट्र विधाताओं की राय से पांच साल से बढ़कर सात साल हुआ है। महातमसा की शक्ति की प्रचंडता का निर्णय करके आदमी ने सिहर-कर उसे स्वीकार कर लिया है। इसमें आदमी ने गलती नहीं की है। काया में जैसे छाया, ऐसा ही अस्तित्व है उसका। उसे लंघन किया जा सकता है? लेकिन अभी भी क्या…?

अभी भी क्या मनुष्य की चेतना ने सात साल की उम्र के दायरे को पार नहीं किया है?

अभी भी क्या आदिम प्रकृति के अंधे नियम के प्रभाव के आगे बेबस की नाईं आत्मसमर्पण की कमजोरी को मिटाने जैसे बल का उसने संचय नहीं किया है? प्रागैतिहासिक मनुष्य के मस्तिष्क गठन से आज के आदमी का प्रभेद कितना है!

गोली से बिंधा हुआ, मरता हुआ आदमी अक्रोध से रामनाम का उच्चारण कर सका है। युद्ध में घायल हुआ आदमी अपने मुंह तक आए हुए पानी को दूसरे के लिए दे देता है— तुम्हारी जरूरत ज्यादा है। दाई नीड इज ग्रेटर दैन मी।

कठोर से कठोर पीडन के बावजूद आदमी अन्याय के आगे नहीं झुका। न्याय के लिए उसने हंसते हुए मौत को गले लगाया। कमजोर और मुसीबतजदा को बचाने के लिए बलवान आफत में कूद पड़ा है, खुद जान देकर उसने दुर्बल को बचाया है। इसे सोचने तय करने में उसे समय नहीं लगा। चेतना का निर्देश तैयार ही था। चेतना ने जीव-प्रकृति के अंधे नियम को बेदाग पार किया है।

उन्होंने खुद भी तो पार किया है—। वह क्षेत्र जरा अलग है।

उन्होंने सुरमा को प्यार किया, परन्तु सुमति के साथ कोई दगा नहीं

अभियोग की प्रखर मुखरता जम आई है।

बार-बार तसवीर के सामने आए, फिर कमरे में गए। दीवारघडी की टिक्-टिक् के सिवाय कमरे में कोई आवाज नही। समय बीत रहा है, रात करीब आती जा रही है।

इस अभियोग का जवाब उन्हे देना पडेगा। जवाब से इस बेदर्द अभियोग-मुखरता को चुप करना होगा। जवाब सुनने को उन्हीके मन मे मानो लाखो-लाख लोग उत्सुक है और उन सबके आगे खुद वह खडे हैं।

—कहो सुमति, अपना अभियोग कहो।

तसवीर के सामने खडे होकर कहा, कहो!

ओह, सुमति की आखो मे, चेहरे पर कैसी गम्भीर वेदना! इतनी तकलीफ पाई है! लेकिन क्या करू? तकलीफ तो मैंने नही दी है सुमति, अपनी तकलीफ तुमने आप तैयार की है! तसर के कीडे की नाई दुख का जाल बुनकर अपने-आपको ही उसमे *बाध लिया।*

—क्या कह रहे हो? मैं तुम्हे प्यार करता तो ऐसा नही होता? मेरा मन, मेरा हृदय, मेरा प्यार पाने से तुम तितली जैसी अनुपम होकर *बन्धन से बाहर निकल आती? मन, हृदय, प्यार न देने का अपराधी हू मैं?*

—नही। यह मैं नही मानता! मैंने मन, प्यार, हृदय देना चाहा था, तुम ले नही सकी, तुम्हारे हाथो आया नही। इस दुनिया में जिसे जितनी शक्ति है, वह उससे एक तिल भी ज्यादा नही पा सकता।

यह उसका पावना नही। ईश्वर की दुहाई देने से भी नही होता। धर्म, मत, शपथ—किसीके बल पर नही। उठाकर हाथ मे दो, तो निकल आता है, *आचल मे बाध दो तो उसकी गाठ खुलकर खो जाता* है, आचल फट जाता है। हा, पावना न भी हो तो एक चीज दी जा सकती है, दान—दया। वह भी दिया था मैंने, तुमने लिया नही।

तसवीर के सामने खडे होकर ज्ञानेन्द्रनाथ वास्तव मे बोल रहे थे।

आखों की निगाह अस्वाभाविक रूप से चमक रही थी। वह तसवीर मानो बोल रही हो। वह मानो अशरीरी आविर्भाव को प्रत्यक्ष कर रहे हों! शब्दहीन बात सुन रहे हों जैसे। वह मानो विश्व संसार के सभी लोगों के बीच सुमति के आमने-सामने खड़े हों।

—क्या कहा ? सुरमा को तो मैं प्यार कर सका था ?

—उसके बिना मेरे लिए कोई उपाय जो नहीं था सुमति। उसमें प्रेम की शक्ति थी, उसे ले सकी थी, लिया था उसने। वही क्यों खुद नहीं लेकर तुमने उसे उसके हाथों पर फेंक दिया था, उठाकर रख दिया था। तुमने ही बिना वजह संदेह से आदमी से आदमी के प्रेम को शाप दन म अनोखे नियम से आशीर्वाद बना दिया था, सार्थक प्रेम म बदल दिया था। प्रेम को तुमने जहर देकर मारना चाहा था, वह जहर पीकर प्रेम नीलकंठ जैसा अमर हो गया।

—क्या कह रही हो ? विवाह के समय वचन दिया था मैंने ?

—हां। वचन दिया था और उस वचन के अक्षर-अक्षर का पालन किया था। सुरमा को प्यार करते हुए भी तुम्हारे जीते जी कभी उसे मुंह से जाहिर नहीं किया, मन म गुंजाइश नहीं होने दी, मन म ख्याल नहीं लाया। तुमने चोट करके मेरे धीरज के बांध को तोड़ना चाहा था। मैं कलेजे के जोर पर सहता रहा, उसे टूटने नहीं दिया। आखिर तुमने आग लगा दी। वह आग घर म लगी। उसी आग म तुम आप जलकर राख हो गई। मैं जला। किसी तरह से जिन्दा रह गया। मगर निर्दोष हूं।

—क्या ?

एकाएक उनकी आखें विस्फारित हो उठी। जरा देर चुप रहकर उन विस्फारित आखों की निनिमेष दृष्टि से तसवीर को देखते रहे। उसके बाद दबी आवाज से बोले,

—क्या ?

—क्या कह रही हो ?

—उस चरम घडी मे मैंने तुम्हारे हाथ से अपना हाथ छुडा लिया था ? मैंने तुम्हे आपद विपद, आघात अमगल से बचाने की प्रतिज्ञा की थी ईश्वर के सामने ? वह प्रतिज्ञा

—हा। हा। की थी। वह प्रतिज्ञा नही रख सका। कबूल करता हू। परन्तु करू क्या ? अपनी जान का तो मैंने आफत म डाला था। फिर भी नही हुआ ? क्या करू अपने हाथ से टूटे काच का टुकडा

—क्या ? क्या ? उसे निकालकर तुम्हे गोदी म उठाकर निकलने की आखिरी कोशिश नही की थी ? नही। नही, नही की थी। तुम्हे बचाने के लिए अपनी जान दे सकता था, देना उचित था, पर मैं नही द सका। नही दी। यह मैं स्वीकार करता हू।

—क्या ? दुनिया मे आदमी का चैतय बहुत पहले सात साल पार कर चुका ? हा, हुआ है। हुआ है। बेशक हुआ है। दोष मानता हू मैं।

थकावट से वह टूट से पडे। खडे रहने की शक्ति नही रह गई। एक कुर्सी पर बैठे। सर को झुका कर मेज पर रखा। अलक्षित पृथ्वी की जनता के सामने मानो उन्होने घुटने टेककर बैठना चाहा। फिर सिर उठाया। सुमति जैसे अभी भी कुछ कह रही हो।

—क्या ? क्या कह रही हो ?

—और भी बारीकी से विचार करने को कहती हो ?

—यह कह रही हो कि नियति ने आग के घेरे को छेदहीन करके तुम्हे घेर लिया था, एक ही छेद था, वह था मेरे हाथ का आश्रय ? बडी व्याकुलता से, बडे विश्वास के साथ उसी रास्ते से हाथ बढाकर तुमने पकडा था, मैंने उस रास्ते को भी बन्द कर दिया ?

—हा, दिया। बद कर दिया। मैं दोषी हू। दोषी हू मैं।

उनकी चेतना मानो खोती जा रही हो। जी-जान से अपने को सचेतन रखने की कोशिश की। चेतना को अभिभूत नहीं होने देंगे। सभी आवेग, सभी ग्लानि के पीडन को बरदाश्त करके वह अडिग रहेंगे।

समय कितना बीता, इसका उन्हें पता नहीं। घडी टकटक करती चल रही है, चल ही रही है, उधर भी नहीं ताका। सिर्फ इतना ही याद है, सुरमा आकर लौट गई। कॉल ने दरवाजे के उस तरफ से कई बार आवाज करके उनका ध्यान खींचना चाहा। मगर उन्होंने सर नहीं उठाया। केवल अपने को सचेतन रखने की चेष्टा करते रहे। तप करते रहे।

सर उठाया। चेहरे पर प्रशान्त स्थिरता, अविचलित बुद्धि, स्थिर मस्तिष्क—उनकी चेतना अविचल धीरता से अचप शिखा की तरह ऊपर को उठती हुई जा रही थी। मन का आदि-अतहीन आकाश शरत् के पूरे चाद की दीप्ति से निखरा हुआ। चारों तरफ छोटे छोटे असख्य आलोक बिन्दु-से जाने कितने मुखड़े तैर आए। किनके ?

जिनका विचार किया है, उनके ?

फैसला देखने आए हैं वे ? डिवाइन जस्टिस ! डिवाइन जजमेंट !

किसी समाज, किसी राष्ट्र की दड विधि के मुताबिक नहीं, यह दड विधि सभी देश, सभी समाज से परे है। सूक्ष्मतम, पवित्रतम ! डिवाइन ! आत्मसमर्पण करेंगे। वह सब कुछ कबूल करते हुए कानून के आगे आत्मसमर्पण करेंगे। लेकिन इसकी कोई कीमत नहीं है। क्योंकि उन्हें मालूम है, किसी भी देश के प्रचलित-दड विधान में यह अपराध अपराध ही नहीं गिना जाता। कोई भी आदमी विचारक इसका विचार भी नहीं जानता। वह स्वय भी विचारक हैं, वह भी नहीं जानते कि क्या विचार-विधि है इसकी, क्या दड है इसका ?

विचार कर सकते हैं ईश्वर। ईश्वर के सिवाय इसका विचारक नहीं। ईश्वर को आज मान रहे हैं वह। तो भी खुले आम आत्मसमर्पण करेंगे। उससे पहले—

सुरमा !

कहा है सुरमा। शायद हो कि वह पत्थर हो गई हो। छाती चीरकर आप ही एक लम्बा निश्वास निकल आया। धीरे चाल से निकल आए। सुरमा की ही खोज मे चले। पर बरामदे पर आकर ठिठक गए। लगा, विचार सभा बैठ चुकी है।

आधी रात की पृथ्वी ध्यान मग्ना-सी अचल, स्तब्ध। आकाश के बीचोबीच चाद—जैसे महाविराट की ललाट-ज्योति जलती हो। कटे-फटे मेघो के बीच बारिश से धुला गाढा नीला आकाश का टुकडा महाविचारक के ललाट सा प्रशात। विचारक मानो आसन पर बैठकर इन्तजार कर रहे हैं।

अभिभूत की नाई धीरे-धीरे उतरकर प्रागण के ठीक बीच मे खडे हुए। सूक्ष्मतम विचार से अपने अपराध की स्वीकृति मे वैराग्य आत्म-समर्पण की प्रसन्नता उनके हृदय मे मेघरहित आकाश-सी हस रही थी। आकाश से धरती तक निर्मल चादनी की चमक और महामौनता के बीच उन्होंने चित्त को अभिभूत करने वाली एक महासत्ता का अनुभव किया। अभिभूत हो गए, गो कि कई दिनों से वर्षा और हवा का कैसा दुर्योग था!

सृष्टि के उस आदिकाल ही से चल रही है यह तपस्या। भयकर उत्ताप से उबलती हुई, दवदाह से जली, प्रलय की आधी से विक्षुब्ध, महावर्षण से प्लावित तबाह हुई पृथ्वी इस तपस्या के आशीर्वाद से आज हरी-भरी, प्रसन्न है, प्राणो से स्पदित है, चेतनामयी है। तपस्या मे लीन उसी महासत्ता ने मानो इस समय ज्ञानेन्द्रनाथ की अभिभूत सत्ता के सामने अपने को प्रकट किया। अपनी ध्यानमग्न आखें खोलकर जैसे

उनके वक्तव्य का इन्तज़ार कर रहे हों।

ज्ञानेन्द्रनाथ ने आकाश की ओर आँखें उठाईं।

मेरा विचार करो। दंड दो। मुझे तमसा की सारी ग्लानि से ऊपर उठाओ। मुक्ति दो मुझे। पीछे ओसी घास पर पैरों की आहट। थकावट से मंथर। वेदना की उदासी से हलकी। सुरमा आ रही है। रोती हुई सुरमा।

फिर भी उन्होंने मुँह नहीं फेरा।

आदि-अन्तहीन व्याप्ति में तपस्या में लीन इस विराट सत्ता के चरणों में प्रणाम निवेदन करके उनकी अन्तरात्मा उस समय स्थिर, शांत, स्तब्ध होती जा रही थी। मुमति की भृकुटि मन्थर उस महासत्ता में मिली जा रही है।

आज अगर किसी प्रकार से सुरमा पर मारक हमला हो, सुरमा क्यों, किसी पर भी हो, तो अपनी जान हथेली पर लेकर वह उसे बचाने के लिए कूद पड़ेंगे। सीमाहीन सूने आकाश में पूर्णचन्द्र की तरह मृत्यु में अमृत प्रत्यक्ष है। चेतना उनके अन्तरतम में शतदल-सी पंखड़ियाँ फैला रही थी।

सुरमा उनके बगल में आ खड़ी हुई। थके हारे चेहरे के चारों ओर बाल बिखर पड़े थे, दोनों आँखों के कोने से उतर आई थी दो-दुबली धारा—निराभरण, वेदनाविह्वल, पल्लावे में सादी साड़ी. तपस्विनी जैसी।